पूजा अष्टक

(कथा)

भाग : 1-2

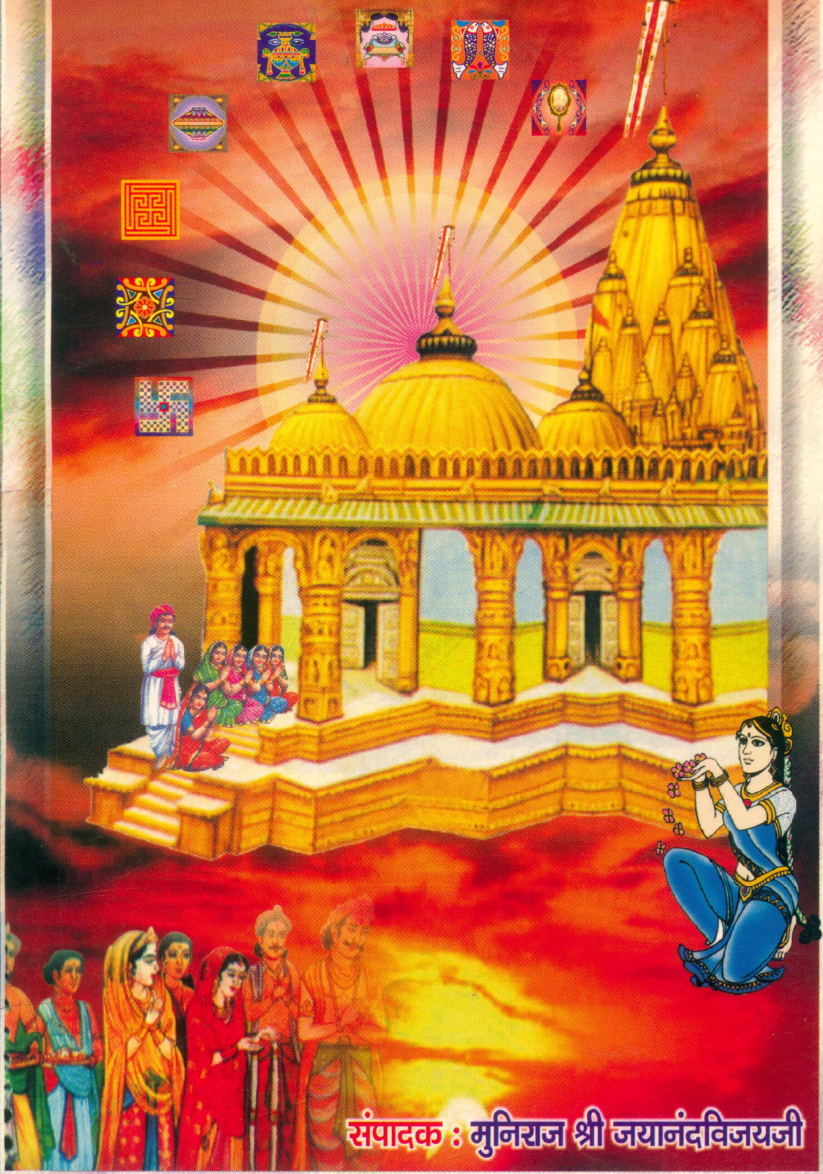

संपादक : मुनिराज श्री जयानंदविजयजी

ा. श्री
सागरसूरि
ानमंदिर
, गांधीनगर

श्री आदिनाथाय नमः ॥

प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमः

पूजा अष्टक

(कथा)

भाग १-२

दिव्याशीष

आचार्यदेवश्री विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी

मुनिराजश्री रामचन्द्रविजयजी

संपादक

मुनिराज श्री जयानंदविजयजी

प्राप्तिस्थान

शा देवीचंद छगनलालजी
सदर बाजार, भीनमाल,
राज. ३४३०२९

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढ़ी
साँथू, राज. ३४३०२६

शा नागालालजी वजाजी खींवसरा
शांतिविला अपार्टमेन्ट,
काजी का मैदान, तीनबती,
गोपीपूरा, सूरत.

महाविदेह भीनमाल धाम
शत्रुंजय पार्क के सामने,
तलेटी रोड, पालीताणा
(सोराष्ट्र) - ३४६ २६०.

पुस्तकका नाम : पूजा अष्टक (कथा) भाग १-२
संपादक : मुनिराज श्री जयानंदविजयजी
संस्करण : द्वितीय प्रत : २०००

प्रकाशक

श्री गुरुरामचन्द्र प्रकाशक समिति भीनमाल - ३४३ ०२९.

संचालक

१) शा सुमेरमल केवलजीनाहर भीनमाल
२) मीलियन ग्रूप सूराणा मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा
३) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार पोथेडी राज. राजेन्द्रा ज्वेलर्स मुंबई-३५.
४) शा हस्तीमल, लखमीचंद, किरणकुमार, प्रकाशकुमार, किशोरकुमार, उत्सवकुमार बेटा पोता भलाजी नागोत्रा सोलंकी परिवार बाफना (राज.) मुक्ति मार्केटिंग, चेन्नाई।
५) शा दूधमल नरेन्द्रकुमार, रमेशकुमार, बेटा पोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.) मंगल आर्ट, मुंबई-२.
६) कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गौतमचंद, विनोदकुमार, महेन्द्रकुमार, रविन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजीभेराजी धाणसा (राज.) श्री सुपर स्पेअर्स, विजयवाडा.
७) अेम.आर. इम्पेक्स 16/A हनुमान टेरेस दूसरा माला तारा टेम्पल लेन लेमीग्टन रोड, मुंबई-७. फोन : २३८०१०८६.
८) गुलाबचंद राजेन्द्रकुमार छगनलालजी कोठारी अमेरीका आहोर (राज.)
९) शा शांतीलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार, बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर. राजेन्द्रा मार्केटींग, विजयवाडा.
१०) शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल, महावीरकुमार, विकासकुमार, कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.) अरूण एन्टरप्राइजेस, गुन्टूर
११) शा सुमेरमल, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु, बेटा पोता पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा, परिवार, मोदरा राज. गुन्टूर
१२) शा नरपतराज, ललीतकुमार, महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल, दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, रींकेश यश बेटा पोता खीमराजजी थानाजी कटारीया आहोर (गुन्टूर)
१३) शा. तिलोकचन्द मयाचन्द अँड कम्पनी, ११६ गुलालवाडी मुंबई नं. ४.
१४) शा. लक्ष्मीचंद, शेपमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार, रमेशकुमार, बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया मोदरा (राज.) गुन्टूर।

मुद्रक : **जय जिनेन्द्र**
३०, स्वाति सोसायटी, सेन्ट जेवियर्स हाइस्कूल रोड, नवरंगपुरा, अहमदाबाद-१४.
फोन : (ओ) २५६२१६२६, (घर) २६५६२७९५ मोबाइल : ९८२५० २४२०४

सो सो युग तक चकमक का पत्थर जल में रहे
फिर भी उसके अंदर की अग्नि बुझती नहीं ।
वैसे ही अनंत काल से हमारे आत्मा में
रहा हुआ परमात्मा वैसे ही रहता है ।

भूल करना यह नहीं, पर भूल करने के बाद
न समझना, न सुधारना, कबुल न करना
यह पतन का पथ है ।

छोटे जलबिन्दु महासागर को छलकाते हैं ।

दुनिया के काम कभी, कीसी के पूरे न होंगे ।
अफसोस यही रहेगा, कि एक दिन हम न होंगे ।

संपत्ति से केवल प्रसिद्धि मिल सकती है, सुबुद्धि नहीं ।
संपत्ति संप को नष्ट कर सकती है, सुबुद्धि संप को
स्थिर रख सकती है, बढ़ा सकती है, संप बना सकती है ।

चार प्रकार के मानव प्रकाश से अंधकार की ओर,
अंधकार से प्रकाश की ओर, प्रकाश से प्रकाश की ओर,
अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाले ।

तन-मन और धन के सदुपयोग की मौसम
उसका नाम महोत्सव ।

पापी को पापी के रूप में
अपने मनमें बिठानेवाला पापी है ।

हो सके तो छोड़ दो इस जीवन की चिंता
हो सके तो छोड़ दो धन कमाने की चिंता
शरीर और धन को कौन ले गया साथ
तप और दान में कर उपयोग हाथोंहाथ

तन की शीतलता चंदन से
मन की शीतलता वंदन से
धन की शीतलता नंदन से

विलास का जितना विकास
उतना जीवन का विनाश

वासना उसी को सताती है
जिसने उसे मन मंदिर में संजोयी है ।

जो अपने विचारों को शुद्ध बनाता है,
उसी के लिए भावना भवनाशिनी है ।

मिथ्यात्व के कारण संसार मीठा लगता है ।

केवलज्ञान के दिव्य प्रकाश में
प्रत्येक आत्मा शुद्ध निश्चयनय से
परमात्म स्वरूपी दिखायी देती हैं ।

पूजा अष्टक भाग - १

॥श्री मज्जिनेन्द्राय नमः॥

महावीरं प्रणम्यादौ, नरदेवेन्द्रपूजितम्।
जिनपूजाष्टकस्यात्र, हिन्दीभाषायां करोम्यहम्॥

अथ 'श्रीअष्ट प्रकार पूजा कथानकम्' लिख्यते

गाथा- वरगन्धधूपचीक्खकणेहिं, कुसुमेहिं पवरदीवेहिं।
नेवज्जफलजलेणं, अट्ठविहा होइ जिणपूया ॥३॥

संस्कृतछाया- वरगन्ध धूपाक्षतकौः कुसुमैः प्रवरदीपैः।
नैवेद्यफलजलैः, अष्टविधा भवति जिनपूजा ॥३॥

व्याख्या- श्री वीतराग भगवान की पूजा के आठ भेद क्रम से लिखते है। प्रथम पूजा प्रधान वासक्षेप, दूसरी धूप, तीसरी अक्षत, चौथी पुष्प, पंचमी दीपक, छट्ठी नैवैद्य, सातवीं फल और आठवीं जल पूजा होती है ॥३॥

अथ जयशूर कथा

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रधान वैताढ्य नामक पर्वत के ऊपर दक्षिण दिशा की पंक्ति में गजपुर नामक नगर था। वहां विद्याधरों का स्वामी जयशूर नामक राजा प्रजापालन पुत्रवत् करता था। उसकी पटरानी सुखमती थी, वह उसके साथ सुख से राज्य सुख भोगता था-एक बार उस रानी सुखमती के उदर में देवलोक से च्युत होकर, उत्तम स्वप्नों से सूचित, कोई सम्यग् दृष्टि देवता गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ। उस रानी के तीसरे मास में एक दोहद उत्पन्न हुआ। जिसकी चिन्ता से रानी प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। एक दिन रानी को अत्यंत कृश देखकर राजा ने पूछा, हे प्रिये! इतनी दुर्बल क्यों होती है? तेरे मन में क्या मनोरथ है? इस प्रकार जब राजा ने पूछा तब रानी प्रसन्न होकर कहने लगी, हे स्वामी! मैं मन में ऐसा विचार करती हूं कि आप के साथ अष्टापद तीर्थ पर जाकर श्री वीतराग भगवान की प्रतिमाओं की वासक्षेप से पूजा करूं तो मेरा मनोरथ सफल हो।

ऐसी शुभ बात सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और एक प्रधान से विमान की रचना कराकर रानी सहित उसमें बैठकर वेग के साथ वह अष्टापद पर्वत पर पहुंचा। वहां अच्छे सुन्दर पटह, ढोल, शंख और काहली आदि मनोहर वाद्य बजने लगे। राजा ने रानी सहित विधि पूर्वक जिन प्रतिमा को मज्जनादि कराकर बड़े हर्ष के साथ वासक्षेप से पूजा की।

अनन्तर प्रसन्न हुए राजा रानी पर्वत से उतरकर एक वन में पहुंचे। वहां एक वन के कुञ्ज से दुःखदायी दुर्गन्ध प्रकट हुई, जिसको नासिका नहीं सह सकती थी।

ऐसा जानकर रानी आश्चर्य पाकर अपने भर्तार से पूछती है, हे स्वामिन्! यह प्रधान सुगन्धवाले पुष्पों से प्रफुल्लित वन में यह किस की दुर्गन्ध आती है? यह मुझ को अत्यन्त असुन्दर लगती है। यह सुनकर राजा बोला हे प्रिय! क्या तू नहीं जानती है? यह तेरे मुख के सामने ऊंची भुजा करके खड़े हुए मुनिराज विराजमान है। यह बड़ी शिला के तट पर खड़े हुए है। इनका देह अचल है। निर्मल सूर्य के सामने दृष्टि है। भयंकर कठिन तपस्या करते है। इनकी कान्ति देवताओं से भी अधिक है। तेज से सूर्य समान है। मध्याह्न काल में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से तपे हुए शरीर से पसीना निकलता है। जिस से देह का मैल भीग जाता है अतः शरीर से दुःखदायी दुर्गन्ध प्रकट हुई है। ऐसे राजा के वचन सुनकर रानी बोली। इस मुनिराज का धर्म तो सुन्दर है, ऐसा श्री वीतराग प्रभु ने शास्त्रों में निरूपण किया है। परन्तु प्रासुक (फासु) जल से साधु को स्नान कराया जाय तो कुछ दोष नहीं। ऐसा सुनकर राजा ने कहा हे सुन्दरी! ऐसी बात मत कहो।

देखो जो साधु होते है वे संयम रूप जल से ही स्नान करके सुखी और पवित्र होते है। यह बात सुन रानी ने कहा मैं जरूर स्नान कराऊंगी, जिससे इस साधु की यह दुर्गन्ध मिट जायेगी। पुनः पति ने एक बार, दो बार निषेध किया तथापि स्त्रियों के हठीले स्वभाव से उसने पति के वचन को नहीं माना। तब राजा अपनी पत्नि की हठ जानकर पर्वत के झरणों का जल वृक्ष के पत्तों का दोना बनाकर प्रासुक जानकर मंगाया और रानी को सौंपा, रानी ने प्रसन्न होकर अपना मनोरथ पूर्ण करने लगी। पुनः अत्यन्त प्रसन्न हो उस साधु के शरीर को अत्यन्त स्नेह से स्नान कराया और वस्त्र से पूंछकर सुगन्धित द्रव्य और बावना चन्दन से लेप किया, फिर दोनों ही राजा रानी मुनि को वन्दनकर, विमान पर चढ़कर आगे चले।

उस मुनि के शरीर की सुगन्धि पवन से सब वन में फैल गयी। वहां के भौरे पुष्पों को छोड़कर साधु के शरीर पर आकर बैठ गये और उपसर्ग करने लगे। कठिन दुःख सहन करता हुआ साधु धैर्य धारणकर अपने ध्यान में लग गया और मेरु पर्वत समान अचल हो गया। इस प्रकार दुःख सहते हुए उसको एक पक्ष व्यतीत हुआ।

फिर वे राजा रानी तीर्थ वन्दना, पूजा और भावनाकर उसी मार्ग से वहां आये जहां मुनिराज उपसर्ग में खड़े थे। पास आने पर भी रानी को मुनीश्वर दृष्टि में न आये। तब स्वामी से पूछा, हे प्रियतम! जो साधु यहां देखे थे वे कहां गये? उस जगह पर तो काला वृक्ष वनाग्नि से जला हुआ मालूम होता है। तब वे दोनों अत्यन्त समीप गये तब देखा कि काले भ्रमर सुगन्धि के लोभ से मुनिराज के शरीर

पर बैठे उन्हे चूस रहे हैं।

जो इन्होंने उपकार किया था वह अवगुण हो गया, यह क्षण भर विचारकर विद्याधर राजा ने उन भौंरो को झटककर शरीर से अलग किये, तब मुनि के उपसर्ग का अन्त आया। उस समय चार घातियाँ कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहिनीय कर्म और अन्तराय कर्म) क्षय हुए। सब दुःखों का नाश करने वाला मुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। तब चार जाति के देवता संतुष्ट होकर केवलज्ञान की महिमा करने आये। निकाय वासी भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिक ये चार प्रकार के देवताओं ने इकट्ठे होकर पुष्पों से सुगन्धित जल की वर्षा की।

इस अवसर पर विद्याधर राजा जयशूर और रानी सुखमती भी पास आये और वन्दना स्तुतिकर सामने खड़े हो हाथ जोड़कर इस प्रकार विनती करने लगे। हे मुनिराज! जो हमने अज्ञान से आशातना अविनय किया है उसे आप क्षमा करे। यह बात सुनकर मुनीश्वर बोले हे राजन्! मन में खेद मत करो, क्योंकि यहां किसी का जोर नहीं चलता है। जिस जीव ने जैसे कर्म बांधे है वे उसी तरह निश्चय भोगे जाते हैं और शास्त्रों में भी कहा गया है कि जो मनुष्य साधु के शरीर से मैल और पसीनों की घृणा (जुगुप्सा) करता है, वह अनेक भवों में कर्म दोष के कारण घृणितपना पाता है। और भी शास्त्र में कहा है कि कई मनुष्य मैल से मैले है, कई धूलि से और कई भस्म से मैले है, परन्तु यह मैले नहीं है। जो पाप कर्म करते हैं उनको तीनों लोकों में सबसे बढ़कर मैला जानना चाहिए।

ऐसे मुनिराज के वचन सुनकर सुखमती रानी बहुत भयभीत हुई कहने लगी-हे मुनिराज! मुझ पापिनी ने आपके शरीर के मैल की घृणा की, उसकी क्षमा चाहती हूं, इस तरह कहती हुई मुनि के चरणों में बार बार गिरी और क्षमा मांगी।

तब वृषभ समान मुनीश्वर उसके वचन सुनकर बोले- हे भद्रे! तू मन में खेद धारण मत कर, मेरे सामने ऐसी आलोचना (आलोयणा) लेने से सब कर्म निवृत्त हुए परन्तु एक जन्म में इन कर्मो को अवश्य भोगना पड़ेगा।

इस प्रकार मुनिराज के वचन सुनकर वे दोनों विद्याधर राजा रानी, केवलज्ञानी मुनि को प्रणामकर अपने नगर को आये। राजा ने रानी का इस प्रकार मनोरथ (गर्भिणी स्त्री का दोहला) पूर्ण हुआ समझा और दोनों सुख से रहने लगे।

एक दिन अच्छे समय शुभवेला में और शुभयोग के साथ जैसे पूर्व दिशा प्रकाशमान सूर्य को पैदा करती हैं वैसे सुखमति रानी ने सुखकारी पुत्र को जन्म दिया। पांच धायमाताओं से पाला जाता हुआ वह कुमार यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। अब राजा रानी ने उस पुत्र को राज्यभार दे, दीक्षा ली और प्रतिदिन गुरु के चरण कमलों की सेवा करते रहे। इस प्रकार राजा चारित्रपालकर अन्त में शुभ

ध्यान से अनशन कर सौधर्म देवलोक में गया और रानी सुखमती भी मरकर उसी देवता की देवी उत्पन्न हुई।

वहां देवताओं के सुख भोगकर वह सुखमती सौधर्म देवलोक से च्युत होकर इसी भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर में जितशत्रु राजा की रानी की कुक्षि में कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। सुन्दर रूप और विशाल नेत्र जानकर पिता ने उसका नाम मदनावली रक्खा। चन्द्रमा की कला के समान और कल्पलता के तुल्य प्रतिदिन बढ़ती हुई शरीर के सौभाग्य से यौवनावस्था को प्राप्त हुई।

उसको विवाह योग्य जानकर राजा ने स्वयंवर रचना करायी वहां देश देशान्तरों से विद्याधर, किन्नर और अन्य राजाओं के कुमार इकट्ठे हुए। उन सबको छोड़ राजकन्या ने सुरपुरी नगरी के राजा सिंहध्वज को वरमाला पहनायीं। मदनावली का विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ, राजा ने उसको सर्व अन्तःपुर में वल्लभ की और अपने प्राणों से भी प्यारी समझने लगा। बलदेव वासुदेव की तरह परस्पर अत्यन्त स्नेह हुआ। राजा ने ऐसा उपकार मन में जाना कि इस प्रिया ने बड़े बड़े विधाद्यर नृपतियों को छोड़कर स्वयंवर मंडप में मुझ पादचारी को अङ्गीकार किया, इससे वह बहुत प्रीति रखता था।

इस प्रकार परस्पर विषय सुख भोगते हुए दोनों का समय बीतता था। अनन्तर पूर्व जन्म कृत दोष उदय आया। पूर्वभव में इसने जो मुनिराज के शरीर की दुर्गन्ध से घृणा की थी वह कर्म उदय में आया, उसके सुन्दर देह से दुर्गन्ध उछलकर सब जगह अन्तःपुर में फैल गयी। किसी से सहा नहीं गया, कोई भी इसके पास नहीं रहा, सब दूर चले गये। उस रानी के शरीर की यह दशा देखकर राजा वैद्य, मंत्रवादी और तन्त्रवादियों को बुलाने लगा। सब लोगों ने कई उपाय किये पर रोग दूर न हुआ, अन्त में उन्होंने यह कह दिया कि यह रोग असाध्य है। तब राजा ने रानी को घोर अटवी में भेज दिया और वहां दूर-दूर सुभट उसकी रक्षा के लिए रख दिये।

वहां रानी मन में अपने आपको धिक्कार देती हुई और दुःख भोगती हुई इस प्रकार विचार करने लगी कि मेरे इस जीवन से तो मरना अच्छा है। देखो! मेरा पूर्व में कैसा अच्छा सुन्दर शरीर था। वह क्षण मात्र में नष्ट हुआ। हाय! इस कर्मरूपी कृतान्त ने मेरी कैसी विडम्बना की। मैंने पूर्व भव में बड़े घोर पापकर्म किये हैं उनका यह फल है। हे जीव! अब तू क्यों उदास होता है? इस प्रकार विचार करती, शुद्ध और पवित्र परिणाम से अपने दुःख का समय बिताती थी। जिस सुन्दर वृक्ष के नीचे रहती थी उसी की एक शाखा पर शुक का जोड़ा रहता था। जिस कोटर में ये दोनों निवास करते थे वह मानो राजभवन के झरोखे तुल्य प्रतीत होता था। एक

दिन रानी पलंग पर बैठी हुई ऊपर दृष्टि करती है तो सूआ का जोड़ा दिखायी दिया। जब रात्रि का समय हुआ शुकपक्षी अपनी स्त्री से कहने लगे। हे प्रिये! एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो गयी। तब शुकी बोली हे प्रियतम! आप बड़े यशस्वी है मेरे योग्य कार्य हो वह आज्ञा करे, मैं आपकी सेवा करने को सर्वदा तत्पर हूं।

इस प्रकार दोनो की बातें सुनकर मदनावली ने प्रसन्न होकर विचार किया कि कोई मुझको इस दुःख से दूर होने का उपाय बतावे तो अच्छा हो। इतने में शुकपक्षी अपनी स्त्री से कहता है कि मैं एक आश्चर्य कारिणी वार्ता सुनाना चाहता हूं यह सुनकर शुकी बोली, हे प्रियतम! अचंभा वाली कथा आप मुझे अवश्य कहें, जिससे मेरा मन संतोषित हो। तब कीर कहने लगा, पूर्व भव में एक जयशूर नामक राजा था, उसकी प्रधान स्त्री सुखमती थी। वह जब गर्भवती हुई तब मनोरथ पूर्ण करने को राजा उसको लेकर अष्टापद तीर्थ गया। वहां गन्ध की पूजा की, मार्ग में मुनिराज के शरीर को स्नान कराया, पीछे घर आयी, अन्त में पुत्र हुआ, पुत्र को राज्य समर्पण कर दीक्षा ली, देवलोक गये। वहां से सुखमती का जीव च्युत होकर मदनावली कन्या हुई। वह राजा के साथ ब्याही गयी, वह अब रानी यहां वन में रहती है।

ऐसे शुक के वचन सुनकर मदनावली को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, पूर्व भव का वृतान्त सब जाना। अपनी आत्मा की निन्दा करने लगी। जो इस शुक ने मुझको अपने पूर्व भव का वृतान्त कहा यदि यह ही मुझे इस कर्म से छूटने का उपाय बतावे तो अच्छा हो क्योंकि मैंने मनुष्य भव पाया है इसको धर्म से सफल करना योग्य है इस प्रकार विचार करने लगी।

तब शुकी बोली हे नाथ! वह मदनावली कहाँ है? तब शुक ने कहा, यह तुम्हारे सामने वृक्ष के नीचे पलंग पर बैठी है, यह ही मदनावली है। इसने पूर्व भव में मूर्खता से साधु के शरीर से घृणा की थी उसका यह फल भोगती है। यदि यह श्री जिनराज की गन्ध पूजा दिन में तीन बार (प्रातः मध्याह्न, सायंकाल) भक्ति से करे तो सात दिन में इसका दुःख दूर हो जाय। यह वचन शुक के सुनकर रानी प्रसन्न हुई और पक्षी का वचन हितकारी जाना, और उस कीर के वचन अत्यन्त प्रिय लगे। वे दोनों पक्षी इस प्रकार उसको उपाय बताकर शीघ्र अदृश्य हो गये।

अब मदनावली आश्चर्य को प्राप्त हुई मन में विचार करने लगी यह कीर युगल मेरे चरित्र को कैसे जानता है? जब मेरे शरीर से यह वेदना चली जाय तो घर पर जाऊँ और राजा से मिलकर प्रसन्न रहूं। जब वहां कोई ज्ञानी मुनीश्वर आयेंगे। तब इस शुक चरित्र की बात पूछकर संदेह निवृत्त करूंगी। ऐसा विचारकर प्रथम श्री जिनराज की प्रतिमा मंगाकर सुगन्धी वासक्षेप से पूजने लगी। विधिपूर्वक

त्रिकाल संध्या के समान वीतराग भगवान् को भक्ति से पूजती थी। इस प्रकार पूजा करते-करते सातवें दिन जैसे मन्त्र के बल से पिशाचादिक नष्ट होते हैं उसी तरह उसके शरीर से दुर्गन्ध रोग नष्ट हो गया।

जब रानी ने अपने शरीर का रोग नष्ट हुआ देखा तो सन्तुष्ट हुई, उसके नेत्र आनन्द से प्रफुल्लित हो गये, जो मनुष्य वहां उसकी रक्षा के लिए रहते थे, वे मंगलिक बधाई राजा को जाकर देने लगे। हे राजन्! आपके पुण्य प्रभाव से रानी के शरीर की दुगंधि दूर हुई, ऐसे हर्ष के वचन सुन राजा मानो अमृत की वर्षा से सिक्त हुआ, संतोष को प्राप्त हुआ। उन चौकीदार मनुष्यों को बहुत दान दिया और अपने परिवार सहित वन में गया। उस रानी को बड़े उत्सव के साथ हाथी पर चढ़ाकर नगर में लाया और राज भवन में प्रवेश किया। अत्यन्त संतुष्ट हुआ राजा नगर में महा महोत्सव कराने लगा। वह बड़े स्नेह से समय बिताता था।

एकदा राजा की सभा में उद्यानपाल ने आकर विनती की, हे महाराज! मनोहर नामक वनखण्ड में अमरतेज नामक मुनिराज पधारे हैं। तप संयम पालते हुए, शुक्ल ध्यान से ध्यान करते हुए, उस मुनिराज को लोकालोक प्रकाश करने वाला केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया है। ऐसी बात सुनकर राजा मन में प्रसन्न हुआ। राजा के उत्सव से भी यह उत्सव बड़ा जानकर आनन्दपूर्वक परिवार साथ ले मुनीश्वर कों वन्दना करने के लिए रानी सहित वनखण्ड में गया। और भी बहुत से नगर के लोग वन्दना करने को वहां आये।

वहां तीन प्रदक्षिणा देकर चरण कमल में प्रणामकर सकल परिजन और परिवार के साथ सामने राजा बैठ गया। गुरु की शुश्रूषा और धर्म सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई, तब केवली ने धर्मदेशना प्रारंभ की जब मुनि धर्मदेशना दे चुके, तब रानी मदनावली ने अवसर पाकर पूछा।

हे मुनिनाथ! हे भगवन्! वह शुकराज जीव कौन था? जिसने मुझको दुःख में पीड़ित जानकर उपदेश देकर इतना बड़ा उपकार किया।

तब केवली कहते है हे भद्रे! यह शुक तुम्हारे पूर्व भव का भर्तार था। वह देव भव में देवता उत्पन्न हुआ, उसने तुम्हारा बड़ा दुःख जानकर तुम्हारे स्नेह से कीर मिथुन रूप हो तुम्हारे पास आकर उपाय बताया। वह देवता कभी तीर्थंकर की देशना में गया था, वहां तुम्हारा सर्व चरित्र सुना, तब तुम्हारे दुःख दूर करने को पूर्व जन्म के स्नेह से, जिनराज की गंध से पूजा करने का उपाय बताया।

केवली महाराज के यह वचन सुन बहुत संतोष को प्राप्त हुई। फिर पूछने लगी, हे भगवन्! यहां आपके केवल ज्ञान की महिमा करने को बहुत से देवता आये है, सो क्या वह शुक भी आया है? यदि आया हो तो कृपाकर मुझको

दिखाइये। इस बात का मुझे बड़ा कौतुक है। तब केवली बोले यह तुम्हारे मुख के सामने बैठा है। मणि और रत्नो से जड़ित मुकुट और कुंडल स्वर्ण आभूषण धारण किया हुआ है सो यह शुक देवता और तुम्हारे पूर्व भव का पति है।

इस प्रकार केवली के मुख से वचन सुनते ही मदनावली उसके पास गयी और कहने लगी हे सज्जन देव! तुमने मेरे पर बहुत उपकार किया है। मैं आपका प्रत्युपकार क्या कर सकती हूं? मैं मनुष्य जाति आप का उपकार करने को असमर्थ हूं। यदि कोई उपकार इस जन्म में हो सके तो कृपा कर कहिये।

तब देवता ने कहा, हे भद्रे! तु भी सुख से उपकार करने को समर्थ है, वह उपकार बताता हूं आज से सातवें दिन देवयोनि से च्युत होकर मैं वैताढ्यपर्वत पर विद्याधर राजा का पुत्र होऊंगा। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। तू मुझको प्रतिबोध देकर धर्म सुनाना। यह उपकार जरूर करना।

ऐसी बात देवता के मुख से सुनकर मदनावली प्रसन्न हुई और उस वचन को अंगीकार कर कहने लगी-तथास्तु! देवता सब देवताओं के साथ अपने स्थान पर गया।

मदनावली अपने स्वामी से कहने लगी। हे नाथ! मैंने देवलोक का सुख भोगकर आपको पति अंगीकार किया। अब मनुष्य जन्म का सुख भोग रही हूं। आप बड़े पुण्यवान है, आपके प्रताप से सब दुःख क्षय हो गये। परन्तु अब संसार का दुःख क्षय हो, ऐसा कीजिये। तब राजा ने कहा, हे सुन्दरी! विधाता ने बड़े पुण्य के योग से यह मनुष्य देह दी है, यह रत्न समान अमूल्य पदार्थ बार-बार मिलना बड़ा दुर्लभ है। सो हे रानी! हाथ में आया हुआ रत्न वृथा कैसे गमाया जाय? (इसे सुख भोगकर पूर्ण करो)

ऐसे राजा के वचन सुनकर रानी ने कहा हे नाथ! तुम्हारे हृदय की बात मैंने सर्व जान ली। परन्तु इस संसार में किसी के साथ प्रतिबंध करना योग्य नहीं। जहां संयोग है, वहां वियोग अवश्य है। संसार में किस को संयोग और वियोग नहीं हुआ?

इस प्रकार वैराग्य रंग में रंगे हुए रानी के वचन सुनकर भी राजा ने बहुत स्नेह और मोह से जब रानी को आज्ञा नहीं दी तब रानी ने तत्काल गुरु के हाथ को अपने मस्तक पर स्थापन कराया और दीक्षा ग्रहण की।

राजा मुनिराज को वन्दनाकर रानी के वियोग से वर्षाकाल में मेघधारा के समान आंसू गिराता हुआ गद्गद् स्वर से रुदन करने लगा। पुनः विलाप करता हुआ मदनावली आर्या को हित शिक्षा दे धर्म सुनकर गुरु के चरण कमल में वन्दनाकर वहां से उठकर अपने राजभवन में आया और विस्तार के साथ वीतराग

भाषित धर्म करने लगा।

अब वह मदनावली आर्या गुरु की आज्ञा के अनुसार आर्यिकाओं के साथ विहार करती हुई अत्यन्त कठिन तप करने लगी और शुद्ध भावना धारण करती थी।

वह देवता भी सातवें दिन देवलोक से च्युत होकर विद्याधर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ। द्वितीया के चन्द्र समान बढ़ने लगा। उसका नाम मृगाङ्ककुमार रक्खा गया। जब वह यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब मदनावली आर्या विहार करती हुई उस विद्याधर के आश्रम द्वार के पास आयी और निश्चल ध्यान लगा लिया रत्नों और कांचन से जड़ित विमान में बैठे हुई मृगाङ्ककुमार ने उसको देखा। और उसके चारों ओर फिरने लगा।

कुमार ने मदनावली को पूर्व भव की विकारी इच्छा के साथ देखकर कहा, हे कृशोदरी! तू ऐसी उग्र तपस्या क्यों करती है? इस बात का कारण मुझे कह, यदि तेरे भोग सुख की वांछा है तो मेरे कहे वचन सुन मैं खेचर विद्याधर राजा का कुंवर हूं, मृगाङ्ककुमार मेरा नाम है रत्नमाला नामक राजपुत्री के साथ पाणिग्रहण करने को जाता हूं। बड़े महोत्सव के साथ यहां आया हूं। मैंने तुमको देखते ही स्नेहवश होकर इच्छा की है और यहां खड़ा रहा हूं। इस प्रकार मीठे मोहितकारक वचन कहता है और अनेक काम चेष्टा भी दिखाता है पर वह साध्वी किंचित्मात्र भी ध्यान से नहीं चली। संयम गुणों में सावधान होकर उसके वचनों पर विश्वास नहीं करती है। निश्चल होकर मेरु चूलिका की तरह दृढ़ हो गयी।

तब कुमार फिर स्नेह से कहता है। हे सुभगे! इतना कष्ट तपस्या में क्यों करती है? इन कष्टों को छोड़ दे और इस विमान में आकर बैठ जा, मुझे रत्नमाला से कोई प्रयोजन नहीं है। तेरे साथ ही मैं उत्तमसुख भोगूंगा। इसलिए तू हमारे विद्याधरों के नगर में प्रवेश कर।

इस प्रकार वह जैसे बार-बार पूर्वभव का स्नेह दिखाता है वैसे ही यह साध्वी तप में दृढ़ होकर शुभ ध्यान ध्याती है पर उसके वचन पर प्रतीति नहीं करती है। उसके विकार सहित वचन सुनकर आतुर नहीं हुई। क्योंकि इसने बड़ी संयम शक्ति धारणा कर रक्खी है।

मृगाङ्ककुमार स्नेह से मूर्च्छित हो अनुराग दिखाता हुआ अनुकूल उपसर्ग करता है, परन्तु इस साध्वी को शुक्ल ध्यान में रहते हुए विमल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। चार प्रकार के देवता उसकी महिमा करने को आये और उसके मस्तक पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। यह देख कुमार विस्मित होकर उसके मुख कमल की तरफ देखता है।

तब उस साध्वी ने केवल ज्ञान से उसको पूर्वभव का पति जानकर सब बात कहीं। हे महानुभाव! इस भव से दूसरे भव में तुम विद्याधर राजा खेचर हुए थे, मेरे साथ राज्यमुख और विद्याधर की पदवी भोगी थी। फिर अन्त में राज्य छोड़ दीक्षा लेकर संयम पालनकर देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां च्युत होकर फिर विद्याधर हुए। इस प्रकार मनुष्य और देव संबंधी सुख भोगे है- तथापि अभी तक स्नेह नहीं छोड़ा। मोहनीय कर्म संसार को बढ़ाने वाला हैं, इसलिए तुम एकाग्र चित्त होकर धर्म के विषय में उद्यम करो।

उस केवल ज्ञान धारण करने वाली साध्वी के ऐसे वचन सुनकर उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्व जन्म का संबंध स्मरण किया। इस संसार से विरक्त हो प्रबल संवेग को धारणकर अपने हाथ से ही मस्तक के केश उखाड़ दिये और उस साध्वी को वन्दनाकर बोला हे भगवती! साध्वी! आपने जो पूर्व भव का संबंध बताया वह सत्य है। जाति स्मरण ज्ञान से मैंने प्रतिबोध प्राप्त किया है। अभी आपने मेरे पर बड़ा उपकार किया है। बहुत क्या कहूं, आपने मूझ को धर्म का बोध देकर संसार रूप अंधकूप में पड़ते हुए को बचाया, इसी कारण मैंने सम्यक्त्व अंगीकारकर वीतराग प्ररूपित पंचमहाव्रत की दीक्षा लेकर तप में आदर किया। इस प्रकार बहुत सी स्तुतिकर, अपने आत्मा की निन्दाकर, आलोचनाकर उग्र तपस्या के प्रभाव से घन घाति कर्मो की राशि को हटाकर शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाद को प्राप्तकर शाश्वत मुक्ति स्थान में पहुंच गया।

वह आर्या मदनावली भी बहुत वर्षो तक केवल ज्ञान सहित विचरकर भव्य जीवों को प्रतिबोध दे-संसार के दुःखों से छूड़ाकर, स्वयं शाश्वत स्थान को पहुंच गयी।

इति श्री पूजाष्टके गन्धसुवासक्षेपोपरीमदनावलीकथासंपूर्णम्

घण्टा नाद यानि जागृत होना। दूसरों को भी जागृत करना। प्रभु का संदेश अपनाने की प्रेम से पूर्ण प्रेरणा। उसके नाद में है मादकता आत्मा की। नाशकता है मद और मान की। उसके घोष में पोष है परमात्म भाव का। देव भी दुंदुंभी बजाते हैं।

अथ विनयंधर की कथा

इसी भरतक्षेत्र में पोतनपुर नाम नगर है। वहां सूर्यवत प्रतापी एक राजा राज्य करता था, उसका नाम वज्रसिंह था। उसको सिंह की उपमा इसलिए दी गयी है कि शत्रुरूपी गजेन्द्रों को मारने में सिंह समान था। उसके सकल अन्तःपुर में माननीय, हृदय को हरण करनेवाली, मन को मोहित करनेवाली कमला नामक भार्या है और दूसरी देह से निर्मल और गुणों से विमल शीलवती विमला नामक रानी है। उस राजा की प्रीति दोनों के ही साथ निबिड़ है। दोनों ही की कुक्षी से पैदा हुए कमल और विमल दो पुत्र हैं। दोनों ही रूप और गुणों से युक्त हैं। ये दोनों देवयोग से एक ही दिन में उत्पन्न हुए हैं। उत्तम गुण और शुभ लक्षणों को धारण करने वाले दोनों को देखकर आश्चर्य प्राप्त हुआ राजा सुख से राज्य का पालन करता था।

एकदा वहां शास्त्रज्ञ, अद्‌भुत प्रशन बताने वाला एक नैमित्तिक आया और राजसभा में आकर राजा को आशीर्वाद दिया। राजा ने उसकी आवभक्ति की और फल फूल से तथा वस्त्र आभरणादिक से सन्तुष्टकर सादर अपने पास बैठाया और पूछा, हे नैमित्तिक! तुम शास्त्र के बल से कहो कि इन दोनों कुमारों में कौन मेरे राज्य का अधिकारी होगा? ऐसे राजा के वचन सुन ज्योतिषी बोला, हे महाराजा! गणित शास्त्र के बल से कहता हूं, यह कमला रानी का पुत्र आपके पाले हुए राज्य का नाश करेगा और द्वितीय राजकुमार लक्षणवान् निर्मलगुणरत्नों का घर विमला रानी का पुत्र तुम्हारे राज्य को पालन करने में धुरंधर होगा। राजा इन वचनों को सुन अभ्यन्तर कोप से जाज्वल्यमान होता हुआ अपने सेवकों को बुलाकर इस प्रकार आज्ञा देने लगा कि, हे सेवको! तुम कमलप्रभा के पुत्र को वन में छोड़ आओ। उन सेवकों ने आदेश पाकर उसी रात्रि में जहां रानी कमलप्रभा पुत्र सहित सोती थी, जाकर उसके गोद से कुंवर को ले लिया। उस समय रानी अत्यन्त विलाप करने लगी, हाय! हाय! दस दिन के जन्मे हुए मेरे पुत्र को कौन दुष्ट लेकर जाते है?

वे राजा के चाकर उस बालक को ले वन में छोड़कर पीछे राजा के पास आकर बोले, हे महाराजा! जहां कोई जीव जन्तु नहीं है, ऐसे भयंकर वन में छोड़ आये हैं। ऐसे वचन सुन राजा भी अश्रुपात करने लगा, बहुत दुःखी होकर पछताने लगा, मोह से विलाप करता क्षणमात्र भी रूकता नहीं था। कुंवर को जलांजलि दी पहले क्रोध आया था पर अब मोह वश अपने अंग से पैदा हुए पुत्र के विरह से अनेक प्रकार के शब्दों से रोने लगा और उसका हृदय बहुत दुःखों से भर गया है। करूणा के शब्द सुनकर नगर के लोग इकट्ठ हुए और उन्होंने भी कुमार के विरह से दुःख धारण किया।

इधर वह बालक अटवी में अकेला पड़ा था, वहां एक भारण्ड नाम पक्षी आया

और बालक को चोंच से उठाकर आकाश में उड़ गया।

पृथ्वी पर से किसी दूसरे भारंड पक्षी ने उसको देखा और उड़कर के मांस के लोभ से उसके साथ लडाई करने लगा। आपस में युद्ध होने लगा, इतने में चोंच से छूटकर वह बालक नीचे कुएँ में गिर पड़ा। उसी कुएँ में कोई राहगीर मार्ग चलते प्यास के मारे जल ढुंढता पड़ गया था, एक बार इस पान्थ को ग्रीष्म में सूर्य की किरणों से अत्यन्त तृषा लगी तब इस कूएँ पर जल देखता था इतने में नैत्रों में अंधेरी आयी और भीतर पड़ गया। पान्थ ने कान्ति से उद्योत करते हुए तेजस्वी बालक को ऊपर से उल्कापात के जैसे पड़ते हुए देखा, और पानी में पड़ने के भय से लम्बी भुजा फैला कर पकड़ा और पुत्र के जैसे छाती से लगा लिया, और चिन्ता करने लगा जितना मुझे मरने का दुःख है अब इससे कहीं अधिक दुःख इसका हो गया है, यह कैसे जीयेगा? मैं इसके भूख प्यास का क्या प्रबंध करूंगा। फिर विचारकर हृदय में धैर्य धारण किया और कहने लगा इस बालक का आयुष्य लम्बा है तो निश्चय इसकी रक्षा होगी और यह जीवित रहेगा। यह कहकर छाती से लगा लिया और रोते हुए बालक को आश्वासन दिया।

इतने में दैवयोग से वहां सुधन नामक सार्थवाह अपनी सार्थ संपदा से युक्त डेरा लगाकर वन में विश्राम लिया हुआ था। इस अवसर में कूएं पर जल ग्रहण करने को उस सार्थवाह के पुरुष आये और भीतर से एक पान्थ और बच्चे के रोने का शब्द सुना-उन्होंने सार्थवाह से कहा वह भी सुनकर आश्चर्य के साथ परिवार सहित वहां आकर कुएँ में पूछा तुम कौन-कौन हो! तब पान्थ ने संक्षेप में अपना वृतान्त कहा-तब सार्थवाह ने बुद्धिमानी से लकड़ी और डोरी से बच्चे सहित पान्थ को बाहर निकलवाया और बड़े आदर और उत्साह से अपने डेरे में ले गया। वहां पान्थ ने सार्थवाह को प्रणाम किया और कहा-मुझे और इस बालक को जीवित दान देने वाले आप हो, मैं आपका बड़ा उपकार मानता हूं। तब सार्थवाह बोला तुम कौन हो-और यह बालक कौन है? तुम्हारे और इसके कैसे सम्बन्ध हुआ? मुझे आप दोनों की बाते सुनने का बड़ा कौतुक है, मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि यह बालक तुम्हारा ही है या अन्य का? तब पान्थ कहने लगा हे सार्थवाह! मैं बड़ा दरिद्री और दुःखी हूं इससे संतप्त हुआ परदेश को चला था, कितना ही मार्ग उल्लंघनकर इस अटवी में आया और मुझे बहुत तृषा लगी तब जल गवेषण करता हुआ इस कूएं में गिर गया। वहां ही पड़े मैंने आकाश मार्ग से उतरते हुए और रोते हुए इस बालक को देखा, मुझको करुणा उत्पन्न हुई, मैंने बांह से पकड़कर छाती से लगा लिया। यह हमारा वृतान्त है-मैं इस बालक का पालन करने में असमर्थ हूं। इसलिए हे सत्पुरुष! सार्थवाह! इस बालक को आप ग्रहण करो मैंने आपको सन्तुष्ट होकर दिया है।

सार्थवाह ने बड़े हर्ष के साथ उस बालक को अंगीकार किया और उस पान्थ को विधि सहित बहुत द्रव्य दान दिया और विदा किया। वह धनपति भी मार्ग में प्रयाण

करता-करता अपने घर आया। उस राजकुमार को अपनी स्त्री सेठानी को दिया। कुटुम्ब और परिवार में बधाई बांटी गयी। बहुत उत्साहपूर्वक विनयंधर नाम स्थापन किया। सेठानी ने उसको अपने पुत्र के समान पालन किया।

एकदा वह सार्थवाह अपने परिवार के साथ दूसरे नगर कांचनपुर में व्यापार के लिए गया, साथ में विनयंधर पुत्र को भी लिया। वहां वह कुमार सार्थवाह के पुत्र समान दिखता था, परन्तु नगर के लोग उसको देखकर आपस में यह बात करते थे कि यह सार्थवाह के चाकर का पुत्र मालूम होता है। यह बात सुनकर मन में बहुत दुःखी हुआ विचार करता है जो वचन शास्त्र में कहे है वे सत्य है, जैसे मनुष्य पराये घर में काम करते हुए कौन-कौन दुःख नहीं पाते हैं?

एक समय वह कुमार क्रीड़ा करता हुआ श्री जिनराज के मंदिर में पहुंचा। वहां साधु महाराज धर्म कथा का व्याख्यान देते थे वह भी बैठकर सुनने लगा। वहां जिन पूजा का प्रस्ताव चल रहा था, महिमा करते हुए साधु ने कहा जो मनुष्य कस्तूरी, चंदन, अगर, कपूर, सुगन्धित द्रव्य सहित धूप से पूजा करे तो सुरेन्द्र और नरेन्द्रों को पूज्य हो। यह सुनकर विनयंधर कुमार विचारने लगा जो सदा काल श्री वीतराग भगवान् की धूप से पूजा करते है वे धन्य है। मैं इस समय असमर्थ हूं, एक दिन मुझे भी जिन पूजा का उदय नहीं होता है, इसलिए इस मेरे मनुष्य जन्म को धिक्कार है, मैं ऐसा धर्महीन होकर नर भव कैसे पा लिया। इस तरह विचार करता हुआ अपने घर पहुंचा। सार्थवाह ने इसको उदास आता हुआ देखकर कारण पूछा और गन्ध धूप सहित एक धूप का पुटक (पुड़ियो) दिया। विनयंधर कुमार ने सन्तुष्ट चित्त होकर कहा आज शुभ अवसर प्राप्त हुआ। जितने इसके परिवार वाले थे उन्होंने भी एक-एक धूप पुड़ा ले चण्डिका देवी के मंदिर में जाना प्रारम्भ किया और उस देवी के आगे धूपदानी में डाल दिये। विनयंधर कुमार धर्म पर अनुराग रखता हुआ श्री वीतराग भगवान के मन्दिर में गया और हाथ पैर धोकर वस्त्र से नासिका बांधकर बड़ी भक्ति से धूपदानी में धीरे-धीरे धूप करने लगा।

वह धूप का गन्ध पृथ्वी और आकाश में फैलाया। कुमार ने धूप भाजन हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की कि जब तक यह धूप भगवान के आगे लगता रहेगा तब तक मैं अपने घर नहीं जाऊंगा। ऐसा अभिग्रह लिया।

उस समय आकाश में यक्ष और यक्षिणी विमान पर बैठकर कहीं जाते थे, तब यक्षिणी उस कुंवर की भक्ति देखकर बोली, हे स्वामिन्! देखो यह युवा जिनराज के आगे सुगन्ध धूप कर रहा है आप क्षण भर विमान ठहराओ तो इस धूप का परिमल (गन्ध) ग्रहण करें! इसकी कैसी शक्ति है? यह शक्ति और भक्ति वाला प्रतीत है, एकाग्रचित्त से धूप दिये जाता है और अपने स्थान से चलित नहीं होता।

तब वह यक्ष विचारने लगा कि सब लोग मेरे डर से दौड़ जाये पर वह कुमार स्थान से चलित नहीं हुआ, अब मैं ऐसा उपद्रव करूं जिस से यहां से उठ जाय। ऐसा

विचारकर अपने शरीर को बढ़ाकर उस के शरीर के चारों तरफ से वेष्टित कर (लपेट) लिया और बल से राजकुमार के शरीर की हड्डियों को तोड़ने लगा। प्रत्येक अंगो में पीड़ा करता है। ऐसा भयंकर उपद्रव उसने किया तो भी वह यक्ष कुमार को स्थान से चलायमान नहीं कर सका तब यक्ष प्रत्यक्ष हो इस का सच्चा परिणाम जानकर बोला हे-हे सत्यवादी पुरुष! तुम धन्य हो, मैं आपके इस अतुलसाहस से संतुष्ट हुआ हूं, आप जो वस्तु चाहते हो कहो- वह अभी उत्पन्न कर दूं। इसी अवसर में राजकुमार का धूप का अभिग्रह भी संपूर्ण हुआ! प्रतिज्ञा सफल हुई, तब यक्ष को प्रणाम करके विनय के साथ कहने लगा, हे देव! आपके दर्शन से ही मैंने सर्व मनोरथ पा लिये। तब यक्ष ने फिर कहा, हे वत्स! मैं तेरे पर अधिक सन्तुष्ट हुआ हूं। शास्त्र में कहा हे कि देव दर्शन और सत्पुरुष वचन कभी निष्फल नहीं होते। यह कहकर सन्तुष्ट हुए यक्ष ने सर्प के विष को मिटाने वाला रसायन सदृश एक दैदिप्यमान रत्न दिया और बोला कि हे कुमार! और कोई भी तेरा काम हो तो कह दे अभी पूर्ण करता हूं।

तब विनंयधर कुमार यक्ष को नमस्कारकर विनय के साथ बोला, हे देव! यदि आप मेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुए तो मेरा कर्मकर (दास) का नाम नष्ट हो जाय और मूल कुल प्रगट हो, तब मेरे चित्त को सन्तोष उत्पन्न हो। यह सुन यक्ष बोला, तथास्तु, यह कहकर अन्तर्द्धान हो गया। राजकुमार भी श्री जिन भगवान को प्रणामकर भक्ति के साथ इस प्रकार कहने लगा, हे जिनेन्द्र स्वामी! मैं अज्ञान से अन्धा हूं। आपके गुण प्रकट करने और स्तुति करने को असमर्थ हूं-'मैंने आज जो श्री जिनराज के आगे धूप दान किया है उसका फल प्राप्त हो। इस प्रकार कहकर बार-बार जिनराज को प्रणाम कर भाव वन्दना करता हुआ, अपनी आत्मा को कृतार्थ मानता हुआ अपने घर आया।

उसी नगर में रत्नरत्थ नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी कनकावली थी, उसके भानुमती नाम की कन्या बहुत से पुत्रों पर हुई अतः राजा को अत्यन्त वल्लभ थी। एक दिन रात्रि में सोती हुई उस को भयंकर विषैले काले सांप ने डस लिया। जिस से राजकुल में बड़ा भारी कोलाहल मचा। 'दौड़ो दौड़ो' काले सांप ने राज कुमारी को काटा! बचाओ! ! ऐसा शब्द सब राजभवन में फैल गया। राजा भी सुनकर वहां आया और पुत्री के स्नेह से विलाप करने लगा, नेत्रों के जल से कपोलों को धोने लगा। राजपरिवार और परिजन सब दुःखित हुए बैठे हैं।

जब राजा ने कुंवरी का शरीर निश्चेष्ट और अचेतन देखा तो स्वयं मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अग्नि से जले हुए अंग पर खार के समान यह दूसरा राजा का दुःख जानकर सब लोक अन्तःपुर और सब परिवार सहित उच्च स्वर से रोने लगे। कई वृद्धपुरुष जल की बूंदों से राजा को छांटने और बावन चन्दन शरीर में लेप करने लगे। पंखा हिलाने से राजा को कुछ चैतन्यता प्राप्त हुई। तब राजा ने कई विषवैद्य, मन्त्रवादी, गारूड़ी आदि को बुलाया। उन्होंने भी बहुत उपचार अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार किये परन्तु चेष्टा रहित होने से कुछ भी गुण न हुआ। राजा उसको निश्चेष्ट

जान कर श्मशान भूमि में ले आया। चन्दन काष्ट से चिता बनायी गयी पास में ज्वलंत अग्नि स्थापन की गयी, इस अवसर में जो कुछ हुआ वह चित्त लगाकर सुनो।

वही विनयंधर कुमार किसी गांव में कुछ काम करने को गया था। पीछे आते हुए प्रेतवन (श्मशान) में बड़ा भारी कोलाहल और रोने का निर्घोष सुना और राजादि लोगों को रोते और विलाप करते देखा। यह देख राजकुमार ने लोगों से पूछा, यहां क्या है? तब लोगों ने पिछला सब हाल सुनाया। यह सुनकर विनयंधर कुमार बोला, तुम अपने स्वामी से कहो कि एक मनुष्य राजकन्या को जीवन दान देता हैं। यह सुन श्रेष्ठपुरुषों ने जाकर राजा से कहा। तब राजा हृदय में बहुत प्रसन्न हुआ, कुमार से बोला जो आप इस राजकन्या को जीवित कर दे तो मैं आप को इसी कन्या के साथ अर्धराज्य सौंपता हूं-और जो आप इसके सिवाय कुछ मांगोगे तो भी दूंगा। बार बार क्या कहूं कुंवरी को जीवित करने से मेरे प्राण भी आप के अधीन है।

तब कुमार राजा को नमस्कार करके बोला हे देव! ऐसा मत कहो जब आप का काम सिद्ध हो जाय तब जैसा उचित हो वैसा करना अभी तो आप अपनी पुत्री को मुझे दिखाओं। ऐसा कहते ही राजा ने उस कन्या को चिता से निकलवाकर विनयंधर कुमार के आगे मंगाई। उस समय बहुत लोग इकट्ठ हो गये।

कुमार ने भी भूमि शुद्ध की, गोबर से मण्डल बनवाया, उस पर अक्षत, पुष्प, चंदन से पूजनकर धूप दीपादि स्थापन किये। उस यक्ष का अपने मन में स्मरण करता हुआ उस रत्न के पानी से कुमारी के शरीर पर छींटा दिया। कुमारी को कुछ चेतना प्राप्त हुई सर्प विष दूर हुआ। फिर वहां से उठकर इधर सब लोगों को देखा, राजा ने उसको अपनी गोद में ले लिया, बड़े हर्ष को प्राप्त हुआ, पुत्री को विषमुक्त देखकर हर्षोल्लास से राजा ने माना कि जैसे मेरा शरीर अमृत की धार से सींचा जाता है। पुत्री को गद्‌गद् स्वर से पूछता है-हे वत्से! तेरे शरीर में पीड़ा कम हुई? पुत्री ने कहा पिताजी मेरे शरीर में कुछ भी वेदना नहीं है। यहां चिता क्यों बनायी गयी है? श्मशान भूमि में मुझे लाने का क्या कारण है? यह मण्डलादि क्यों किये गये? इतने आदमी इकट्ठे होकर रुदन और विलाप करते है? यह सब सुन राजा बोला, हे पुत्री! तुझे काले सांप ने डसा था। जब तू निश्चेष्ट हुई और वैद्य तथा मन्त्रवादी अलग हुए, तब यहां श्मशान भूमिं में तू लायी गयी है, परन्तु इस हितकारी पुरुष ने तुझे और मुझे प्राणदान दिया है, यह निष्कारण परोपकारी है। यह सुनकर कन्या बोली हे पिताजी! यदि यह बात इसी प्रकार है, तो यह पुरुष मेरा प्राणप्रिय भर्तार हो। ऐसी बात सुन राजा प्रमुख सब लोगों ने 'अच्छा-अच्छा' वचन उच्चारण किया।

पीछे हाथी के स्कंध पर कुमार सहित कन्या को बैठाकर हर्ष, मंगलगीत, वाद्य और उत्सव सहित नगर में प्रवेश कराकर राजा अपने घर ले आया।

वहां पुत्री का जन्मोत्सव बड़ी धूमधाम से कराया और प्रधानमंत्री को बुलाकर कुमार की मूलशुद्धि पूछी। तब मंत्री ने कहा, यह सार्थवाह के पास कर्मकर (दास) है,

ऐसा सुनते है, असली बात सार्थवाह को पूछने से पता लगे। तब राजा ने सुधन सार्थवाह को बुलाया और पूछा। तब उसने कहा हे स्वामी! इसकी असली बात तो मैं भी नहीं जानता। मैंने तो कूपादिक से पान्थ द्वारा पाया है। यह बात सुनकर राजा वज्राहतवंत भूमि पर मूर्छित हो गिर गया। मन्त्री ने शीतलोपचार से चेतना प्राप्त कराई। राजा ने कहा, जिसका कुल, माता, पिता, न जाना जाय, उसको अपनी लड़की किस प्रकार दी जाय? और यदि आदर के साथ यह कन्या इसको नहीं दूंगा तो मेरा वचन असत्य हो जायेगा। इस प्रकार चिन्ताग्रस्त मन से व्याकुल हो रहा हैं।

इसी अवसर में वह यक्ष प्रत्यक्ष आकर राजा के पास कहता हैं-हे महाराज! यह कुमार पोतनपुर नगर के स्वामी वज्रसिंह राजा का पुत्र है। कमला रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ हैं। राजा ने दूसरे पुत्र पर राग रखकर इसे द्वेषवश वन में छूड़वा दिया। वहां से भारंड पक्षी ने पकड़ा, दूसरे पक्षी से परस्पर युद्ध करते चोंच से गिरकर कुएँ में गिरा। वहां पहिले ही पड़े हुए पान्थ ने इसे पकड़ छाती से लगाया। सार्थवाह ने दोनों को बाहर निकलवाया। पान्थ ने बालक सार्थवाह को दिया, यह वृत्तान्त हैं। ऐसा कह वह यक्ष अर्न्तधान हो निज स्थान गया।

राजा ने यक्ष के वचन सुनकर कहा, यह मेरा भाणेज हैं, कमला मेरी बहिन हैं। मन में हर्ष धारणकर विनयंधर कुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया और अर्धराज्य की संपत्ति सानन्द सौंप दी।

विनयंधर राजकुमार भानुमती राजकन्या और राज्य सुख प्राप्त होकर हर्ष को प्राप्त हुआ और उसके मूल वंश की शुद्धि भी प्रगट हो गयी, कर्मकर नाम दूर हुआ, यह सब बातें श्री जिनराज के धूप दान के प्रभाव से हुई।

अनन्तर वह राजकुमार अपने पिता पर बड़ा अमर्ष (क्रोध) धारण करता हुआ। अपनी सेना लेकर अपनी जन्मभूमि पोतननगर की तरफ चला। उस समय उसकी माता कमला रानी के वामनेत्र और वामभूजा फरकने लगी। उसी दिन उसके पिता वज्रसिंह को भी खबर लगी, कि कोई राजा आप के नगर को जीतने के लिए सेना लेकर आता हैं। वह भी अहंकार धारणकर अपनी सेना सजाकर शस्त्रादिक से सजधजकर नगर से बाहर निकला। मार्ग में दोनों में संग्राम होने लगा, परस्पर गज घटा से गजघटा, रथ से रथ, अश्व से अश्व पैदल सिपाहियों से पैदल भिड़ने लगे। दोनों पिता पुत्रों को आपस में संबन्ध का ज्ञान नहीं रहा-इससे राजा अनेक प्रकार शस्त्र सजा खड्ग, बाण, धनुष, भाला, बरछी प्रमुख पुत्र पर चलाने लगा। पुत्र ने भी पिता पर धनुष से कई बाण चलाये, आपस में वर्षा की तरह बाणधारा बरसने लगी।

इसी अवसर में एक बाण राजाने छोड़ा वह पुत्र के वक्षस्थल में जोर से लगा, अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुत्र ने पिता के रथ की ध्वजा, छत्र, बाणों से काटकर भूमि पर गिरा दी, और एक बाण ऐसा छोड़ा जिससे राजा स्तम्भित हो गया। चित्र में पुतली की तरह खड़ा-खड़ा देखता हैं पर कुछ कर सकता नहीं। राजा भीतर क्रोध से जलता,

संताप से तपता, पूर्ण व्याकुल हो गया। उसके सुभटों ने बावना चंदन से शरीर में विलेपन किया। यह देख विनयंधर कुमार हंसकर बोला, हे सुभगे! इस शरीर पर तो अशुचि रुधिरादिक लेपन करना उचित हैं जिस से स्वामी के ताप शान्त हो। शीतल चंदनादिक से कुछ प्रयोजन नहीं, ऐसे विकट वचन कुमार के सुनकर यक्ष प्रकट हुआ और बोला, हे वत्स! यह तुम्हारा पिता हैं ऐसा अविनय मत करो। फिर राजा से कहा हे राजन्! यह तुम्हारा ही पुत्र हैं आपने पूर्व भव मैं वैरानुबंधी कर्म उपार्जन किया उसको छोड़ो। जिसको तुमने द्वेषवश बालकपन में सेवकों से जंगल में छूड़वाया था, वह यही हैं।

ऐसे यक्ष के अमृत समान वचन सुन राजा अत्यन्त हर्षित हुआ, कुमार ने आकर प्रणाम किया, क्षमा मांगी और कहा हे पिताजी! अविनय से जो दुष्कृत हुआ वह क्षमा कीजिए। उसके पिता नरपति सुभट सहित वज्रसिंह राजा भी उस पुत्र को छाती से लगा कर शिरचुंबनकर अत्यन्त स्नेह से कहने लगा। हे पुत्र! जो मैंने तुम्हारे लिये द्वेष, के कारण दुश्चेष्टा की उसको क्षमा करो। इसी अवसर में खबर लगते ही वह माता कमला भी वहां आयी। दूर से देखते ही उसके स्तनों से दुग्ध की धारा निकलने लगी। पुत्र से आलिङ्गन किया, और पुत्र को शिर पर पुचकारा। जैसे नयी प्रसूता गौ बछड़ा से प्यार करती हैं वैसे गोद में प्यार से लेकर इस प्रकार कहने लगी। हे वत्स! धन्य है वह माता जिसने तुझको दूध पिलाकर पाला और गोद में खिलाकर इतना बड़ा किया। फिर अपनी आत्मा की निन्दा करती हुयी पूर्ण पश्चात्ताप करने लगी।

राजा ने नगर में सूचना भेजकर बड़े मङ्ल वाद्य और गान के साथ जन्मोत्सव और पुर प्रवेश कराया। घर पर जाकर आग्रह से पुत्र को राज्यभार दे दिया और कहने लगा हे पुत्र! मैं अब धर्म करता हुआ दीक्षा लूंगा। धिक्कार हो इस राज्य को, जिसके लोभ से मैंने रत्न समान तुझ जैसे प्रिय पुत्र को भयकंर अटवी में अशुचि पदार्थवत् फेंकवा दिया। पाप बुद्धि से मैंने यह बड़ा अकार्य किया। इस संसार के पदार्थ अनित्य हैं, मैंने वैराग्य धारणकर जिनमत में आदर किया हैं। ऐसी पिता की बात सुनकर विनयंघर कुमार बोला हें पिताजी। जिस प्रकार आप मुझकों वैराग्य से राज्य देना चाहते हैं वैंसे मैं भी संयम में इच्छा करता हूँ। इस प्रकार कुमार ने विचारकर अपना राज्य सार्थवाह को देकर विजयसूरि आचार्य के पास पिता के साथ दीक्षा ले ली। इस राजा के राज्य पर विमल कुमार स्थापन हुआ, उसने पिता को दीक्षा की आज्ञा दी, नगर में बड़ा उत्सव किया।

वे दोनों साधु गुरु की आज्ञा में आदर करते हुए, तपस्या धारण करते, संयम मार्ग में उद्योग करते गुरु के साथ विहार करते थे। अन्त अवस्था में संयम पालकर अनशन अङ्गीकारकर शुभ ध्यान सहित काल करके दोंनो ही महेन्द्र नामक चौथे देवलोक में देवता उत्पन्न हुए। वहां देवसुख भोगकर देव आयुष्य पूर्णकर वहां से च्युत हो भरत क्षेत्र में क्षेमपुर नगर में पिता का जीव पूर्णचन्द्र नामक राजा हुआ और

उसी नगर में एक सेठ क्षेमंकर नामक धनिक उसके विनयवती नाम की स्त्री थी, उसके गर्भ से पुत्र का जीव पुत्रपने उत्पन्न हुआ। सेठ बहुत प्रसन्न हुआ, पुत्र के शरीर से धूप समान गन्ध प्रकट हुई है जिससे उसके परिवार और नगर के लोंगो को बड़ा प्रिय लगता है। पिता ने इसके अनुसार धूपसार नाम दिया। पुरवासी गन्ध के लोभ से अपने वस्त्रों को इसके शरीर पर लगाकर पहनने लगे।

राजा राज सभा में बैठा हुआ आश्चर्य से लोगों से पूछता है तुम्हारे वस्त्रों में ऐसी गन्ध कहां से आयी? यह गन्ध देवलोक में भी दुलर्भ हैं। वे नागरिक राजा के वचन सुनकर कहते हैं, स्वामी! यह गन्ध सेठ के पुत्र धूपसार के शरीर की हैं। उसके शरीर के स्पर्श से वस्त्रों में भी यह गन्ध प्रकट हो जाती है।

राजा पूर्वभव के द्वेष के कारण कुमार पर अहंकार धारण करता हैं। राजा ने उस सेठ के पुत्र धूपसार को बुलाकर पूछा, हे कुमार! तू कौन से धूप का गन्ध पास रखता हैं? सत्य कह। कुमार ने विनय के साथ कहा यह तो मेरे ही देह का स्वाभाविक गन्ध हैं, अन्य धूप की सुगन्ध नहीं हैं। ऐसे वचन सुनते ही राजा कुपित हुआ, सेवकों को आज्ञा दी, हे सेवको! इस दुष्ट के शरीर में मल मुत्रादि लगाकर नगर में फेरो जिससे यह सत्य बोले। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर सेवकों ने वैसा किया। इधर वे यक्ष यक्षिणी के जीव देव भव से च्युत होकर मनुष्य भव में आये थे और वहां जिनधर्म साधनकर पुनः देवलोक में देवता हुए हैं-विमान में बैठकर उस नगर के ऊपर होकर केवली के पास जा रहे हैं। मार्ग में धूपसार के शरीर पर अशुचि लेपन देखकर विमान को ठहराया। अवधि ज्ञान से पूर्व का स्नेह जाना, तब उन्होंने उस पर सुगन्धित जल की वर्षा की और पुष्प बरसाये और कहने लगे, हे कुमार! तेरे शरीर पर पूर्व से अधिक सुगन्ध है। ऐसा कहकर देव-देवी आगे चले गये।

अब उस कुमार के शरीर की गन्ध दशों दिशाओं में विस्तृत (फैल) हुई। नगर के लोग बड़े आनन्दित हुए। राजा को भी खबर लगी तो उसने भयभीत होकर कुमार को राज सभा में बुलाया और प्रणामकर कहने लगा-हे सत्पुरुष! मैंने आपके साथ द्वेष के कारण अशुचि विलेपन कराया, उसके लिए क्षमा करो। धूपसार ने कहा-राजन्! इसमें आपका दुषण नहीं, मेरे ही पूर्व जन्म के कर्मो का फल हैं। जो जीव जैसे कर्म बांधते हैं वे बिना भोगे नहीं छूटते हैं। ऐसे सुन्दर वचन सुनकर राजा मन में विचार करता हैं कि इसके पूर्वभव का सम्बन्ध, पुण्य का फल, केवली भगवान् से जाकर पूछूंगा।

ऐसा विचारकर राजा अपने परिवार और परिजन को और धूपसार बान्धव को साथ लेकर केवली के पास गया। विधिवत् प्रदक्षिणा देकर वन्दनाकर बैठ गया और धर्म सुनने लगा। अवसर पाकर नमस्कारकर केवली भगवान् से पूछने लगा, हे भगवन्! इस धूपसार ने पूर्वभव में कौन सा पूण्य किया हैं? देवता ने आकर इस पर पुष्प वर्षा क्यों की? यह कृपाकर हमको कहिये, इसके सुनने का मुझे बड़ा कौतुक हैं।

राजा के यह वचन सुन केवली मुनि कहने लगे-हे राजन्! इस धूपसार ने इस भव से तीसरे भव में श्री जिनराज के आगे प्रधान धूपदान दिया था उसके पुण्य के प्रभाव से इसके शरीर में सुगन्ध उत्पन्न हुई हैं और यह देवताओं का पूजनीय हुआ हैं। धन सम्पत्ति और मनुष्य सुख को भोगने वाला हुआ हैं। अब यह बहुत से मनुष्य सुख और देवसुख भोग कर धूपदान के भव से सातवें भव में मोक्ष जायेगा। यह श्री जिनराज के सामने धूपदान का फल हैं। यह धूपसार इस भव से तीसरे भव में पोतनपुर नगर में तुम्हारा पुत्र हुआ था इत्यादि सब बात केवली महाराज ने राजा को सुनायी। फिर उन्होंने कहा हे राजन्! इसने तुम्हारे साथ युद्ध करते समय सुभटों से कहा था-"अरे सुभटों इस राजा को क्रोध का ताप है तुम चन्दन क्यों लगातें हो, अशुचि पदार्थ लगाओ" ऐसे वचन मुख से निकले थे। उसका फल इस भव में तेरे हाथ प्रत्यक्ष भोगा।

केवली महाराज के ऐसे वचन सुनते ही राजा को जाति स्मरण ज्ञान हुआ। उसने जैसा केवली ने कहा था वैसा सब वृत्तान्त जाना और श्री जिनधर्म में रुचि की और दीक्षा ली। धूपसार को भी धर्म की विशुद्धि प्राप्ति हुई। उसने धन संपदा और परिवार का स्नेह छोड़कर दीक्षा में आदर किया, जिन भाषित विधि से राजा के साथ दीक्षा ली और सब सिद्धान्त जाने।

फिर धूपसार कुमार ने तप, संयम और नियम में अनुराग रखते हुए शुद्ध रीति से तथा मन, वचन और काय के योग द्वारा दीक्षा का पालन किया। अन्त में आयु के क्षय होने पर अनशन, विधि पूर्वक आराधन किया, शुभ ध्यान से मरकर पहले नव ग्रैवेयक लोक में उत्पन्न हुआ। वहां तेईस सागरोपम का आयु पूर्णकर रमणीय देवभोग भोगकर मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मनुष्य के तीन भव और देवताओं के तीन भवोंमें घूमकर देव गति से सातवें भव में मानव गति में पहुँचा, वहां से शाश्वत मुक्ति स्थान को प्राप्त हुआ।

इति श्री पूजाष्टक विषये धूपविषये विनयंधर कुमार कथानकं समाप्तम्।

पूजन तो परमात्मा के पास आने का राजमार्ग है। सद्गृहस्थों के लिए अंगस्पर्श या पूजन पावक अग्नि है। विद्युत करन्ट है। मूर्च्छित आत्मा जागृत बन जाता है। प्रत्येक अंग का स्पर्श करते ही अनंग-अशरीरी-अजन्मा बनने का मन होता है।

शुक पक्षी की कथा

इसी भरत क्षेत्र में सिरपुर नामक नगर है। उसके बाहर उद्यान में श्री ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर था। वह देव विमानवत् अति रमणीय था। उसके सामने एक आम का पेड़ बड़ा मनोहर था, उसकी छाया बहुत गहन थी। उस वृक्ष पर शुक पक्षी का एक जोड़ा रहता था।

एक दिन शुकपक्षी की स्त्री ने अपने पति से कहा। हे नाथ! शालिक्षेत्र से कच्चे चावलों के सिरे खाने का मुजे दोहदा उत्पन्न हुआ है सो कल अवश्य मेरे लीये लावे। ऐसी शुकी के मधुर वचन सुनकर शुकपक्षी बोला। हे प्रिये! यह श्रीकान्त राजा का शालिक्षेत्र है जो उसके कच्चे सिरे लेता है उसको पकड़कर राजा कष्ट देता है और उसको जीवन से अलग कर देता है, ऐसे पति के वचन सुनकर शुकी बोली हे स्वामी! तुम्हारे जैसा शुकपति किस काम का जो अपनी प्राण प्रिय स्त्री का मरण चाहता हो। ऐसे स्त्री के वचनों से अपमान और लज्जा पाकर अपने जीवन की परवाह न करके उसी राजा के शालिक्षेत्र में गया और कच्चे मनोहर चावलों के सिरे लाकर अपनी स्त्री को दिये। स्त्री प्रेम से भक्षणकर अपना मनोरथ पूर्ण करती थी। उधर राजा के रक्षक पुरुष भी खड़े रहते थे तथापि शुक चतुराई के बल से प्रतिदिन शालमञ्जरी ला-लाकर स्त्री को दिया करता था।

इस प्रकार नित्य भक्षण करते-करते कई दिन व्यतीत हो गये, एक दिन वहां स्वयं राजा शालिक्षेत्र देखने आया और एक ओर से पंखीओं ने उजाड़े हुए खेत को देखकर रक्षक से पूछा, हे पालक! कहो इस क्षेत्र को किसने छिन्न-भिन्न किया? तब क्षेत्र पालक ने हाथ जोड़कर विनती की, हे महाराज! यहां एक कीर पक्षी आता है, हम लोग बहुत यत्न करते हैं तो भी मंजरी ग्रहणकर चतुर चोरों के समान जल्दी उड़ जाता है। तब राजा ने कहा यहां पक्षीयों को पकड़ने के लिए जाल बीछा दो और उस शुक पक्षी को पकड़कर मेरे सामने ले आओ दुष्ट चोरवत् उसको प्राण दंड दे दूंगा। इस तरह कहकर राजा अपने स्थान पर गया और शुक राजा की आज्ञा के अनुसार लगाये हुए जाल में आ गया और राजा के पास लाया गया। शुकी भी उसके पीछे आंसु गीराती हुई पति के अति स्नेह से दुःखित हुई दौड़ी-दौड़ी राजभवन में पहुंची।

जब राजा सभा में बैठा था तब क्षेत्रपालक ने विनती की-हे महाराज! वह अपराधी शुक चोर की तरह पकड़ा गया और आपके पास लाया है। राजा प्रसन्न हुआ और उसके पास से लेकर शुक को मारने लगा। इतने में वह शुकी जल्दी से अपने स्वामी के मध्य में खड़ी होकर बोली-हे नाथ! आप इसे क्यों मारते हैं? प्रथम आप मुझे मारो, इस प्रकार वह निःशंक बोली-यह मेरा जीवनदाता पति है, आपके शालिक्षेत्र

के चावलों के कच्चे सिरे खाने का दोहद मुझे उत्पन्न हुआ था। इसने अपने जीवन की आशा छोड़कर मेरा मनोरथ पूर्ण किया है। ऐसे मधुर वचन सुनकर राजा का कोप शांत हो गया और प्रसन्न हो उसकी प्रशंसा करने लगा-हे शुक! विचक्षण! तू बड़ा शक्तिमान् और साहसी है, जो अपने देह की आशा छोड़कर स्त्री की रक्षा की। यह वचन सुनकर शुकी राजा से कहने लगी, हे महाराज! यों तो संसार में माता, पिता, पुत्र, धन और सम्पदा का राग है। परन्तु स्त्री राग अपने प्राणों से भी प्रिय है। आप भी तो श्रीकान्ता रानी के लिए अपना जीवन देने के लिए उद्यत रहते हैं। इसमें किसीका दोष नहीं अपना स्नेह सबको प्रिय है, इस बिचारे शुक का क्या अपराध?

ऐसे गुप्त, युक्तियुक्त शुकी के वचनों को सुन राजा विस्मित हो मन में विचार करने लगा-यह पक्षी गुप्त बात किस तरह जानता है? ऐसा विचारकर राजा बोला, भद्रे! तूने मुझे कहीं देखा होगा, तू यह बात केसे जानती है? इस बात को सुनने का मुझे कौतुक है, तु समझा। तब शुकी बोली हे महाराज! सुनो, मैं एक दृष्टांत देती हूं जो बात आपके अन्तःपुर में हुई है उसको मैं प्रकाशित करती हूं। आपके राज्य में एक तापसी कूड कपट तथा झूठ का भंडार थी। महारौद्र, भयंकर स्वभाव वाली थी। उसका बहुत मान था! आपके अन्तःपूर में स्वेच्छा से प्रवेश कर सकती थी। जीसका खंडन कोई नहीं करता था।

आपकी रानी श्रीकान्ता ने एक दिन कहा-हे स्वामिनी! मैं राजा की रानी हूं और मेरा स्वामी मेरे उपर साधारण प्रेम रखता है, क्योंकि उसके अन्तःपुर में कई वल्लभ भार्याएँ हैं। मैं अपने कर्म वश सुख बहुत कम भोगती हूं। इसलिए हे भगवती! आप मेरे पर प्रसन्न होकर ऐसा काम करो जिससे मेरे पर पति का प्रेम विशेष हो। ऐसा उपाय करो जिससे मेरे मरने और जीने पर जीये। मेरा मनोरथ सिद्ध करो, विशेष क्या कहुं? तब वह तापसी रानी के वचनों का अभिप्राय जानकर बोली, हे भद्रे! यह औषधी का वलय देती हूं तूं अपने हाथों से अपने स्वामी को दे देना जिससे वह तेरे वशवर्ती रहेगा और तेरा मनोरथ सिद्ध होगा। यह बात सुन रानी बोली हे भगवती! मैं राजभवन में प्रवेश ही नहीं कर सकती तो यह औषधीवलय किस तरह हाथ में दे सकूंगी? ऐसे रानी के वचन सुनकर तापसी बोली- हे वत्से! यदि ऐसी बात है तो इस मन्त्र को ग्रहणकर इसके ध्यान से तेरा सद्भाग्य खुल जायेगा।

ऐसा कहकर अच्छे मुहूर्त और अच्छे दिन में उस परिव्राजिक्रा ने रानी को बड़े गुप्त प्रकार से मन्त्र दिया और विधि बतलायी। रानी भी सादर ग्रहणकर उसका ध्यान, पूजा पाठ एकाग्रमन से करने लगी। जैसे विधि पूर्वक उसकी ध्यान पूजा करती थी, वैसै-वैसै राजा का प्रेम बढ़ने लगा। राजा ने प्रतिहारी को भेजा और कहा, रानी को आदर से राजभवन में लाओ। प्रतिहारी ने आकर रानी से कहा हे स्वामिनी! तुम्हे राजा का आदेश हुआ है। रानी ने प्राथना की हे भद्र! राजा ही मेरे भवन में आये, ऐसा प्रयत्न करो। उसने ऐसा ही किया और कहा आज अवश्य राजा तेरे भवन में आयेगा, तू किसी

बात का विकल्प मत करना। यह सुनकर रानी अच्छा शृङ्गारकर अपने परिवार सहित बैठी है। राजा बड़े सम्मान के साथ आया और हथिनी पर चढ़ाकर अपने राजभवन में ले गया। बड़े आदर से पटरानी बनायी। अन्य रानिओं को दोर्भाग्य दिया। उस राजा के साथ श्रीकान्ता रानी वांञ्छित अर्थ सुख भोगने लगी। उसने अपनी इच्छा अनुसार अपने परिवार, परिजनों को बहुत दान दिया और जीस पर द्वेष था उनको दुःखी किये।

इस प्रकार बहुत वर्ष व्यतीत हुए। एक दिन तापसी रानी के पास आयी और पूछने लगी-हे पुत्री तेरा मनोरथ सिद्ध हुआ? ऐसा सुनकर रानी ने तापसी का आदर किया और हाथ जोड़कर विनती की, हे भगवती! जो बात संसार में प्राप्त नहीं थी वह आपके चरणकमल की सेवा से तत्काल प्राप्त हो गयी, परन्तु मेरा मन अभी भी डोलायमान हो रहा है, हृदय में निश्चय नहीं होता है। मैं यह प्रत्यक्ष देखना चाहती हूं कि मेरे जीते राजा जीएँ और मरने पर मरे। तब राजा का स्नेह सच्चा जाना जाये अन्यथा नहीं। यह सुनकर तपस्विनी बोली हे भद्रे! यदि वैसा ही कौतुक देखने की तेरी इच्छा है तो यह जड़ी नासिका के आगे लगाकर सूंघना, जिससे तू मृततुल्य मूर्च्छित हो जायेगी। राजादिक जब तुझको प्राणरहित जानेगा तब मैं आकर तुमको दूसरी जड़ी सूंघाकर जीवीत कर दूंगी। पर देह का रूप नहीं बदलेगा। इस बात का भय मन में मत समझना, इस प्रकार समझाकर तापसी अपने स्थान पर गयी।

पीछे से रानी ने जड़ी को अपने नाक से लगाया, और गंध ग्रहण किया; इतने में राजा के पास सोती हुई प्राण रहित हो गयी। राजा चेष्टा रहित देखकर रोने लगा। अन्तःपुर और नगर के लोग इकट्ठे हुए। राजभवन में रानी मरी, रानी मरी, रानी मरी ऐसी आवाजें आने लगी। राजा की आज्ञा से कई मंत्रवादी, भूतवादी और विद्यावान और जड़ी, औषधी के प्रभावज्ञ मनुष्य आयें और कई उपचारकर थक गयें , पर शांति न हुई और चैतन्य प्राप्त नहीं हुआ।

तब प्रधान मंत्री ने कहा, यह निश्चेष्ट हो गयी अतः अग्नि संस्कार करना चाहिए, जितने उपाय किये वे सब निष्फल हो चुके। ऐसे मन्त्री के वचन सुनकर राजा बोला मुझे भी रानी के साथ जला दो, क्योकि इस प्राण प्रिया के अलावा संसार में जीना व्यर्थ है। ऐसे राजा के वचन सुनकर मन्त्री और नगर के लोग बोले, हे राजन् यह आपका कार्य अनुचित है, आपको करना उचित नहीं।

ऐसे प्रजा के वचन सुन राजा फिर बोला उसका और मेरा जीव एक है,दो नहीं। चंदन काष्ट मंगाओ और चिता बनाओ। यह कहकर रानी के साथ श्मशान में गया, वहां कई अशुभ बाजे बजने लगे। नगर के नर नारी रोने लगे, चारों ओर रुदन की ध्वनि से आकाश और पृथ्वी पूर्ण हो गयी । प्रेतवन में पहुंचते ही चंदन काष्ठ से चिता बनायी गयी, राजा भी रानी सहित उस पर बैठ गया।

इतने में रोती हुई एक परिव्राजिका दूर से आयी और राजा से कहने लगी, हे

देव! यह साहस करना उचित नहीं, यह अलौकिक बात है। यह सुन राजा ने कहा, हे भगवती! यदि ऐसा है तो रानी के साथ मुझे भी प्राण दान दो। यह नहीं जीयेगी तो मेरे भी शरीर का अग्नि संस्कार कर दो। ऐसा राजा का निश्चय जानकर तपस्विनी बोली, है राजेन्द्र! यदि ऐसा है तो आपकी प्रिय रानी को अभी जीवित करती हुं । आप क्षण मात्र ठहरो कायरपना लाकर उतावले मत बनो। इन लोगों के देखते-देखते प्रत्यक्ष जीवित दान देती हूं।

ऐसे वचन सुनकर राजा चिता से उतरा और प्रसन्न होकर, आनन्द से नेत्र विकसित हुए जितनी अपने जीवन की नहीं थी उतनी अपनी प्राण प्रिया के जीवन की लग रही है। राजा बड़े विनय के साथ बोला, हे भगवती! मेरे पर कृपाकर मेरी प्रिय रानी को जीवनदान दो। यह सुनकर ही तपस्विनी ने ज्यों ही संजीवनी जड़ी रानी की नासिका से लगायी, त्यों ही सब नगरवालों के देखते-देखते रानी को चेतना प्राप्त हुई। आलस की चेष्टाकर उठी, राजा को यह बात देखकर अपने जीवन की आशा हुई। रानी को जीवित देख आनन्द को प्राप्त हुआ और हर्ष के आंसू बहने लगे। राजा ऊंची भुजाकर नाचने लगा और कई प्रकार के मंगल बाजे बजवाने लगा।

बड़े महोत्सव के साथ हाथी पर चढ़ाकर अपने नगर में रानी का प्रवेश कराया। तापसी से कहने लगा, हे आर्य ! ये मेरे अंग के आभूषण आपको अर्पण करता हुं, फिर आप जो आज्ञा करें वह करने को तैयार हूं, आपका कथन कभी नहीं लोपूंगा; आपका कार्य सिर से करने को उद्यत हूं। तब तापसी बोली-हे राजन्! मुझे हिरण्य रत्न और आभरणादिक से कोई प्रयोजन नहीं है, मैं तुम्हारे नगर में भिक्षा पाती हूं उसीमें मुझे संतोष है। राजा ने तपस्विनी पर प्रसन्न हो उसको एक कुटी बना दी, स्फटिक मणिमय चारों तरफ भीतें हैं, सोने के खम्भें हैं, रत्न जड़ित आंगनयुक्त, ऐसी सुन्दर कुटी देवविमानवत् प्रकाशमान थी। उसमें रहते-रहते कितना ही समय व्यतीत हुआ। वह तापसी अंत में आर्त्तध्यान से मरकर मैं शुकी हुई हूं। आपको और रानी को देखकर मुझे पूर्व की तपस्या के कारण जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे आपका मेरा और रानी का पूर्व भव स्मरण हो गया।

यह बात श्रीकान्ता रानी ने सुनी तो वह विलाप करती शुकी के पास आयी और विलाप करने लगी, हे भगवती! तू मरकर पंखिनी कैसे हुई? इस प्रकार रानी बार-बार बोली तब शुकी ने कहा, हे कृशोदरी! तू कोई बात का दुःख मतकर। इस जन्म में मुझे जो दुःख है इससे भी बहुत जीव अनन्त गुण दुःख भोगते हैं। फिर शुकी ने राजा से कहा, हे राजन्! इस बात से जैसे आप रानी के वश में है वैसे ही मेरे वश यह मेरा पति शुक है। जो स्त्री पति से जो कहती है वह अवश्य करता ही है इसमें संदेह नहीं। यह वचन सुनकर राजा संतुष्ट हुआ और कहा इस सच्चे दृष्टांत से तुम्हारी अनुमोदना के साथ तुम्हारी आज्ञा पालन करने को मैं उद्यत हुआ हूं । जो इच्छा हो सो मांग, मैं

देता हूं। ऐसे राजा के वचन सुनकर शुकी बोली, हे राजन्! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हुए हो तो मेरे पति को जीवन दान दो इससे अन्य मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

ऐसे शुकी के वचन सुन हँसकर श्रीकान्ता रानी बोली, हे देव! मेरे वचन से इसके पति को छोड़ दो और प्रतिदिन अन्नदान भी दो। ऐसा सुनकर राजा बोला, हे भद्रे शुकी! तुम अपने पति के साथ अपने स्थान जाओ, तुम्हारे वचन से मेंने तुम्हारे पति को छोड़ दिया है। पक्षियों ने कहा, हे राजन्! तथास्तु और ऐसा कहकर आशीष देकर अपने स्थान पर वापिस गयें।

इस तरह जिसका दोहद पूर्ण हुआ, ऐसी शुकी ने दो अंडे (युगल) दिये। एक दिन वह भोजन के निमित्त बाहर गयी, जब वापस आयी तब उसने एक ही अंडा देखा दूसरा नहीं, अपने पुत्र के स्नेह से दुःखित हो नीचे भूमि पर गिर गयी और विलाप करने लगी । इतने में वह शुक अंडा लेकर आया। वह जमीन में लोटती हुई शुकी के सामने जब अंडे को रखा तो मानो वह अमृतसिक्त के जैसे आनन्दित हुई।

उन अंडों के युगल से समय पाकर दो बच्चे शुक और शुकी पेदा हुए। वह बालकों के साथ कुञ्जों में क्रीड़ा करती थी। कभी-कभी उस राजा के शालिक्षेत्र में अपने बच्चों को साथ ले जाती और कच्चे चावलों के सिरो को चोंच से खिलाती, इस तरह क्रीड़ा करते-करते बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक समय वहां चारण श्रमण ज्ञानी मुनि आये, वहां एक ऋषभदेव स्वामी का मंदिर था, उसको वन्दन करने लगे। उनका आगमन सुनकर नगर के नर नारी और राजा आदि सब उनको वन्दन करने और श्रीजिनराज के दर्शन करने के लिए वहा आये। मुनिराज ने धर्मापदेश प्रारंभ किया, अन्त में सब सभा ने अक्षत पूजा का महात्म्य पूछा। वे चारण श्रमण कहने लगे, हे भव्यो! अखण्ड चावलों से पूजा करते हुए अथवा सामने रखते हुए मनुष्य अखण्ड मुक्ति का सुख पाते हैं।

ऐसा सुनकर राजादिक सर्व नर नारियों ने श्रीजिनराज की अक्षत पूजा की। इस तरह लोगों को पूजा करते देखकर शुकी ने आपने पति से कहा, हे प्रियतम! आप भी अक्षतों से जिनराज की सेवा करें जिससे सिद्धि का सुख प्राप्त हो। ऐसा सुनकर शुक ने अखंड अक्षत सुन्दर चौच से ग्रहणकर जिनराज के पास रख दिये, इस प्रकार से माता ने दोनों बच्चों से भी करने को कहा, एवं तीनों ने बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ खेत से अक्षत लाकर पूजा की, अन्त में चारों ही शुभ ध्यान से मरकर देवलोक में गये। वहां देव संबंधी सुख भोगने लगे।

वहां से देवायु भोगकर च्युत होकर उस शुक का जीव हेमपुर नगर में हेमप्रभ नामक राजा हुआ। उस शुकी का जीव भी देवलोक से च्युत होकर उसी राजा की जयसुन्दरी नामक रानी हुई। जो अंडे में से शुकी हुई थी उसने संसार में भव किये। अन्त में वह उसी राजा की दूसरी रानी रतिसुन्दरी नाम की हुई, उस राजा की और भी

पांचसौ रानियाँ थी। स्नेह सबके साथ परन्तु पटरानी वे दो ही थीं, तथा रतिसुन्दरी और जयसुन्दरी राजा की वल्लभा थीं। उनके साथ पांच प्रकार (शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श) का विषय सुख भोगता हुआ राज्य सुख भोगता था।

अब उस राजा के शरीर में कोई समय असह्य ज्वर उत्पन्न हुआ, उससे अत्यंत ताप पीड़ा भोगता है। उन रानीयों ने बावन चन्दन घिस-घिस के लगाया फिर भी शांति नहीं हुई। पृथ्वी पर लोटता हुआ, महा वेदना से विलाप करता रहता है, अशन पान भी नहीं लेता है। इस प्रकार से पीड़ा भोगते भोगते तीन गुणित सप्ताह अर्थात् इक्कीस दिन व्यतीत हो गये। राजा के पास कई वैद्य, यन्त्रज्ञ, मन्त्रवादी, तन्त्रवित्, चिकित्सक, आये और कई उपचार किये, परन्तु किंचित्मात्र भी लाभ नहीं हुआ। तब निराश होकर सब अपने-अपने घर गये।

अब जब राजा को कुछ शांति हुई तब बुद्धि निधान मंत्री ने नगर मे उद्घोषणा कराई, और पटह बजवाया। जगह-जगह सदाव्रत शुरू किये विविध प्रकार के दान दिये गये, श्री वीतराग के मन्दिर मे कई प्रकार की जाप पूजाअे करायी गयी । कहीं कुलदेवी का आराधन प्रारंभ किया। इस तरह करते-करते एक रात्रि के पिछले प्रहर में एक यक्ष प्रत्यक्ष होकर बोला, हे राजन् तू सोता है या जागता है? ऐसे वचन सुनकर राजा बोला, हे देव ! ऐसे दुःख भोगने वाले को नींद कहाँ? यह सुनकर यक्षराज बोला। हे राजन्! मैं तुम्हारे दुःख दूर करने का उपाय बताता हूं। यदि पटरानी अपने शरीर का तेरे पर उतारा करे और अग्निकुंड में अपना देह होम देवे, तो तुम्हारा जीवन और आयु बढ़ेगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं । ऐसे वचन कहकर यक्षराज अपने स्थान चला गया।

अब राजा विस्मित होकर विचार करने लगा, क्या यह इन्द्रजाल है अथवा दुःख से मुझको कोई स्वप्न आया है ? यह स्वप्न तो नहीं अभी अभी मैंने यक्ष को प्रत्यक्ष में देखा है, उसने वचन कहे हैं। इस प्रकार संकल्प करते रात्रि व्यतीत हो गयी, उदयाचल के शिखर पर सूर्य उदय हुआ। राजा ने सभा में सब रात्रि का वृतान्त कह दिया। सब मंत्रिओं ने मिलकर राजा से कहा, हे स्वामी! यदि एक आपके लिए परिवार की बली कर दी जाय तो हानि नहीं, केवल रानी कीं क्या चिंता। ऐसा सुनकर राजा बोला-जो संसार में सत्पुरुष होते हैं वो उपने जीवन के लिए दूसरों के जीव की हत्या नही करते। ऐसा कार्य करना सर्वथा अनुचित है। मेरा शरीर रहे या ना रहे, मैं ऐसा कार्य नहीं करुंगा।

बुद्धिमान मंत्री ने बुद्धि के उपाय से सभी रानियों को बुलाया और रात का यक्ष संबंधी वृतान्त सुनाया। तब सब रानियों ने अपने-अपने जीवन के लोभ से मन्त्री को कुछ भी उत्तर नहीं दिया, लज्जा से अधोमुख होकर खड़ी रहीं। इतने में पटरानी रतिसुन्दरी का मुख कमल प्रफुल्लित हुआ, यदि इनके जीवन के लिए मेरा शरीर काम आवे तो मेरा बड़ा सौभाग्य है, यदि राजा की आयु बढ़े तो मेंने संसार में सब कुछ पा

लिया, अतः इस शरीर का उतारा करो और राजा को बचाओ।

ऐसे पटरानी के वचन से मन्त्री ने राजभवन के गवाक्ष के नीचे ही भूमि पर काष्ठ का संचय किया और अग्नि प्रज्वलित की। वह रानी प्रसन्न चित्त से शृङ्गारकर कुल देवता को नमस्कारकर इस प्रकार के वचन कहने लगी-हे देवताओ आप राजा का जीवन बढ़ाओ। मैं अपने देह को अग्नि कुंड में होम देती हूं। ऐसे रानी के वचन सुन दुःखी हुआ राजा बोला-हे प्रिये! तू मेरे लिए अपना देह मत छोड़, मेरे पूर्व जन्म के जो कर्म है उनको मैं ही भोगूंगा। अपने अशुभ कर्म बिना भोगे नहीं छूटते।

तब रानी पैरो में प्रणामकर राजा से आग्रह के साथ कहने लगी-हे प्रियतम! ऐसा मत कहो, आपके लिए मेरा जीवन जावे तो सफल हो जाये, इसलिए मैं अपने शरीर का उतारा निश्चय करूंगी। यह कहकर नीचे गवाक्ष में बेठ गयी, और नीचे अग्नि कुंड में अपने शरीर डालने को उद्यत हुई । इतने में वह अधिष्ठायक यक्षराज प्रत्यक्ष होकर बोले-मैं तुम्हारे सत्य और साहस से प्रसन्न हुआ हूं, यह यज्ञ कुंड शीतल जल से भरा है। मैं तेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, अतः तेरी जो इच्छा हो सो मांग, मैं देने को तैयार हूं। यक्ष के यह वचन सुन पटरानी बोली-हे यक्षराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो मेरे स्वामी यह राजा हेमप्रभ नामक है जिनका प्राणिग्रहण मैंने माता पिता और पंचो की साक्षी से किया है इनका कल्याण हो और रोग उपद्रव शांत हो अन्य इच्छा कुछ नहीं है। ऐसे रानी के वचन सुनकर यक्षराज बोला-हे भद्रे! यह बात तो होगी ही परन्तु देवदर्शन वृथा नहीं होते, इसलिए तू इष्ट वस्तु मांग। मैं तेरे पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। यह सुनकर रानी बोली-हे देव! आपकी पूर्ण कृपा है तो यह राजा चिरंजीव हो बस इतनी ही याचना करती हूं। पीछे देवता ने राजा रानी को दिव्य अलंकार, वस्त्र सहित एक सोने का कमल पर बना हुआ सिंहासन दिया, इस पर उन दोनों को बिठाकर बड़ी महिमा की। जाते समय ऐसी आशिष दी की तेरा पति चिरकाल तक जीवित रहे। उसकी प्रशंसाकर पुष्प वर्षा की और बोला-हे रानी! तू धन्य है जिसने अपना जीवित दान देकर स्वपति को जीवित किया, ऐसा कहकर देवता चला गया।

अब उस रानी ने अपना जीवित दान मूल्य देकर राजा को वश किया, तब राजा प्रसन्न होकर बोला-हे प्रिये! तू वर मांग मैं तुमको इच्छित देता हूं। ऐसा सुन रानी ने कहा हे स्वामी! जब अवसर होगा तब मांग लूंगी, यह आप जमा रखे। राजा ने भी प्रतिज्ञा कर ली।

एक समय में वह रतिसुंदरी अपने पुत्र की इच्छा करती हुई कुलदेवी से प्रार्थना करती है-हे कुलदेवता आप मुझको पुत्र दीजिए, मैं जयसुंदरी के पुत्र का बलिदान देऊंगी। एवं मनोरथ करती हुई भवितव्यता के कारण दोनों रानियों के दो पुत्र हुए। वे कुमार शुभ लक्षण सहित माता पिता को आनन्ददायी थे। रतिसुन्दरी अपने पुत्र जन्म

से अत्यन्त प्रसन्न हुई, और चित्त में विचार करने लगी यह पुत्र कुलदेवता ने दिया है। अब जयसुन्दरी के पुत्र का बलीदान करूंगी। इसका उपाय ये है की राजाने वरदान दिया है, वह इस अवसर पर ले लेना उचित होगा। सब बात स्वाधीन हो जायगी। ऐसा विचारकर रानी ने अवसर पाकर राजा से कहा-हे महाराज! आपने पूर्व में वर दिया था वह मुझे दीजिए।

यह वचन सुन राजा बोला-हे प्रिये! मैं अधिक क्या कहूं यदि प्राण मांगे तो वे भी देने को तैयार हूं। ऐसा कहकर उसने अपना बड़ा राज्य पांच दिन तक रानी को दे दिया और स्वयं राजा अपने महल में रहने लगा। रानी राजा का महाप्रसाद समझकर राज्य का पालन करने लगी। एकदा रात्रि के पिछले प्रहर में एक सुभट भेजकर जयसुन्दरी के पुत्र को मंगवा लिया। पुत्र के वियोग से उधर माता वियोग कर रही है। इधर इस बालक को स्नान कराया फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प से पूजा की। धूप, दीप, नैवेध की सामग्री लगा कर होम क्रिया प्रारंभ की। अपने पुत्र के शरीर पर उतारा कर इसको कुलदेवी के मंदिर में ले गये। उद्यान में जहां देवी का मंदिर था वहां बड़ा उत्सव कराया गया, अनेक बाजे बजने लगे। यह रानी रतिसुन्दरी अपने परिवारजनों के साथ कई नर नारियों से नृत्य कराती हुई वहां देवी के मंदिर में आयी। नगर के लोग भी वहां महोत्सव में इकट्ठे हो गये।

इस अवसर में एक कांचनपुर का स्वामी विद्याधर राजाओं में अग्रेसरी आकाश मार्ग से जा रहाथा। उसने बालक को बड़ी कान्ति और तेज युक्त देखा और विचारा की यह बड़ा पुण्यवान है और सूर्य समान अथवा तपाये हुए सुवर्णवत् तेजस्वी है। ऐसा विचारकर अलक्ष्य (गुप्त) रीति से उस बालक को ले लिया और अपनी रानी के पास जाकर सौंपा और कहा-हे प्रिये! यह पुत्र तेरे उत्पन्न हुआ समझ। यह सुनकर विद्याधर रानी बोली-हे महाराज! आप क्या कहते है? मैं तो वंध्या हूँ और निर्दय देव ने मुझे बहुत दुःख दिया है, मेरे भाग्य में पुत्र उत्पत्ति कहां? पुनः विद्याधर आनन्दित होकर बोला-हे सुन्दरी! अपने कुलदेवता ने यह बालक दिया है तो इसका पालन पोषण करो। इस प्रकार संशय दूर किया।

रानी ने रत्न राशि समान बालक को गोद में ले लिया। उसे पुत्र समान देखने लगी और कहा प्रथम कर्म वश हमारे पुत्र का विरह था अब यह पुत्र देव ने दिया है। ऐसे वचन कहकर दोंनों राजा रानी अपने नगर में गयें। वहां अपने बालक का बड़े ठाठ से जन्मोत्सव मनाया। वह राजकुमार शुक्लपक्ष के चन्द्रमां की तरह बढ़ने लगा। प्रतिदिन अनेक धाइयों से लालन-पालन किया जाता था, सुख से रहता था।

इधर रानी रतिसुन्दरी ने विद्याधर के दिये हुऐ किसी मृत बालक का बलिदान किया और उसे शीला पर पछाड़ा। उसको मरा हुआ जान बड़ी संतुष्ट हुई। फिर वहाँ से अपने भवन में आयी और अपना मनोरथ पूर्ण समझकर सुख से रहने लगी।

जयसुन्दरी दुःख से दिन बिताती थी। उधर विद्याधर राजा के पास वह बालक बड़ा हो गया उसका नाम मदनकुमार रखा। जब वह यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तब उसने कई विद्या सीखी और उस विद्या के बल से एक विमान बनाया। विमान में बैठकर एक दिन आकाश मार्ग से अनेक पर्वत, नगर, ग्राम को देखता अपनी जन्मभूमि में आया। उसी राजभवन में गवाक्ष में पुत्र वियोग में विलाप करती, शोक समुद्र में डूबी हुई, नेत्रों से पानी की धारा बहाती हुई, अपनी माता को देखा और पास आया। रानी ने भी कुमार को देखा और स्नेह से उसके स्तनों से दुग्ध की धारा निकलने लगी। हर्ष में आंसु टपकाने लगी, स्नेह दृष्टि से देखते-देखते मन संतुष्ट नहीं हुआ। कुमार भी पूर्ण स्नेह से माता का अपहरण कर ले गया।

राजा के सुभट, सामन्त, अश्त्र शस्त्र आदि लेकर ऊंची भुजाकर इधर-उधर दौड़ने लगे। नगर में सब जगह यह कोलाहल हो गया," देखो राजा की रानी को कोई पुरुष हरण कर ले जाता है।" राजा भी बड़ा शूरवीर है परन्तु पदचारी है भूमि पर इसका बस चल सकता है, आकाश मार्ग में नहीं। थोड़ी देर तक सब लोग आकाश की तरफ देखते रहे, बाद वह विद्याधर देखते-देखते अदृश्य हो गया और अपने नगर में चला गया।

वह राजा निराश होकर विचार करने लगा, मुझे यह दुःखअग्नि से जले हुए पर खार के समान अति दुस्सह हुआ, एक तो पुत्र का नाश हुआ और दूसरा रानी का हरण हुआ। इस प्रकार अत्यन्त दुःखित होकर अपने नगर में रहने लगा। अपने घर में सामान्य स्त्री के न होने से भी बड़ी पीड़ा होती है, जिसमें यह राजा की प्रिय रानी थी।

अब चौथे अंडे का जीव देव लोक में अवधिज्ञान से पूर्व संबंध को जानकर विचार करने लगा मेरे भाई ने अपनी माता का स्त्री बुद्धि से हरण किया है। तब तत्काल अपने विमान से निकलकर उसको समझाने के लिए विद्याधर नगर के पास पहुंचा।

वह राजकुमार अपनी माता को लेकर अपने नगर के बाहर उद्यान में आम की सघन छाया में बैठ गया, मन में आश्चर्य करने लगा। वह देवता भी उसी उद्यान में आम्र वृक्ष पर वानर वानरी का रूप लेकर बैठ गया। उनमें से वानर ने वानरी से कहा, हे प्रिये! यह इष्टदायक तीर्थ है इसलिए इस कुण्ड के जल में पड़ने से तिर्यञ्च भी मनुष्य हो जाता है और मनुष्य तीर्थ के प्रभाव से देव हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। इसलिए हम दोनों मनुष्य हो जायेंगे। फिर जल में स्नानकर देव हो जायेगें। जैसे ये दोनों स्त्री पुरुष बैठे हैं वैसै हम भी पुरुष हो जायेगें। यह सुन वानरी बोली-हे प्रियतम! इस पापिष्ठ का नाम कौन ले? जो स्त्री बुद्धि से अपनी माता का हरणकर लाया है, ऐसे पापी का नाम लेने से भी तुम भी पाप में संमिलित हो जाओगी। जैसे इस मनुष्य का जीवन निरर्थक है वैसे तुम्हारा भी जीवन निरर्थक हो जायेगा।

ऐसे वानरी के वचन सुनकर कुमार और रानी दोनो विचार करने लगते है।

उनमें से कुमार मन में विचार करता है, क्या यह मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं? स्नेहवश प्रसन्न हुआ फिर मन में विचार करता है, इसका मेरा स्नेह अपूर्व है जिससे यह मेरी पूर्व जन्म की माता जानी जाती है। इसका मेरा स्नेह पूर्ण हो गया। रानी भी विचार करती है क्या यह मेरा पुत्र है? मेरे उदर से उत्पन्न हुआ है? इस प्रकार वह ऊहापोह करती है।

इतने में कुमार ने अपने हृदय का संदेह वानरी से पूछा-हे भद्रे! क्या यह तुम्हारा वचन सही है? वह सुनकर वानरी बोली, हे कुमार! यह मेरे वचन सब सत्य है। यदि तुम्हारे मन मे कोई संदेह हो तो इस वन में ही एक ज्ञानी साधु रहते है उनको जाके पूछ लो। वे तुम्हारे मन का संदेह मिटा देगें। ऐसे वानरी के वचन सुनकर अपनी माता को साथ लेकर शीघ्र ज्ञानी मुनि के पास पहुंचा। इधर वानर वानरी का जोड़ा इनको बात बताकर अदृश्य हो गया।

कुमार और माता ने ज्ञानी मुनिराज को वन्दनकर मन में विस्मित होकर पूछा-हे भगवन्! क्या यह वानर वानरी के कहे हुए वचन सत्य हैं? तब मुनि ने कहा यह वचन सत्य हैं। इसमें अंश मात्र भी झूठ नहीं। परन्तु यह समाचार विशेष रूप से तो हेमपुरनगर के पास उद्यान में एक साधु बैठे है, उनको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे कहेंगे। ऐसे सुनकर वह विद्याधर अपनी माता को नगर में अपने घर में ले गया। एकान्त में छोडकर अपनी विद्याधरी माता से पूछा कि हे माता! तुम यह बात सच्च कहो मेरी माता कौन और पिता कौन? ऐसे पुत्र के वचन सुनकर विचार करने लगी की कुमार आज मुझे ऐसे पूछता है तो इसको वृतांत की कुछ खबर हुई मालूम होती है, ऐसे विचारकर बोली में तुम्हारी जननी और यह तुम्हारे पिता हैं।

अनन्तर कुमार ने फिर अपनी माता से पूछा, में विशेष कारण जानना चाहता हूं। तब माता ने वही बात कही। फिर कुमार ने अत्यंत आग्रह से पूछा- मेरे जननी और जनक कौन है? तब माता ने कुछ संदेहपूर्वक कहा तब तो कुमार के मन में विशेष संदेह उत्पन्न हुआ। कुमार ने पिताजी को बुलाकर पूछा, तब उन्होंने भी यही कहा की हम ही तुम्हारे माता पिता हैं, इसमें संदेह मत करो। तब कुमार बोला-हे पिताजी मैंने एक नारी का स्त्री बुद्धि से हरण किया है, उसकी सब बात कि और वानरी के वचन, ज्ञानी मुनि को पूछना इत्यादि सब कुछ बात कही और पिताजी से आज्ञा मांगी कि हेमपुरनगर में जाऊंगा और इस बात का निश्चय केवली से पूछूंगा। ऐसे पुत्र के वचन सुनकर विद्याधर राजा ने आज्ञा दी। तब कुमार एक बड़े विमान में विद्याधरी माता पिता और परिवार तथा जन्मदाता माता को बैठाकर हेमपुर की तरफ गमन किया।

वहां उद्यान में केवलज्ञानी के पास जाकर वंदना की और पृथ्वी तल पर बैठ गयें। इसकी माता जयसुन्दरी भी हजारों लोगों के बीच अपने पुत्र के साथ बैठकर धर्मोपदेश सुनती है। इतने में हेमपुर का राजा भी अपने परिवार के साथ और नगर के

नर नारियों के साथ वहाँ आया और वन्दनकर सभा में बैठ गया; धर्म सुनने लगा। अन्त में अवसर पाकर राजा ने गुरु के चरणकमलों में प्रणामकर पूछा, हे भगवन्! मेरी पत्नी जयसुन्दरी किसने हरी और वह कहां है? तब केवली कहने लगे, तुम्हारे पुत्र ने जयसुन्दरी का हरण किया है, दूसरे ने नहीं। यह सुन राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला-हे ज्ञानी! यह बात कैसे हुई? कृपाकर सब बताओ। जब रतिसुन्दरी ने तुम्हारे इस पुत्र को देवी को अर्पण करना चाहा तो विद्याधर इसको हरणकर ले गया था। वही यौवन अवस्था पाकर इधर आया और अपनी माता का हरणकर ले गया। राजा ने फिर निवेदन किया हे मुनिराज! इस दुष्ट पुत्र ने मेरे वंश में कलंक लगाया है और मेरे विरुद्ध कार्य किया है। तब मुनीन्द्र बोले, हे यशस्विन्! सन्देह मत करो, इसने विरुद्ध कार्य नहीं किया है। तब राजा फिर हाथ जोड़कर बोला, हे ज्ञानसागर! इसका सम्बन्ध पूरा कहो, इसको सुनने की मुझे इच्छा है।

तब केवली गुरु कहने लगे-हे राजन्! जब तुम्हारी रतिसुन्दरी ने तुमसे पांच दिन का राज्य मांगा था और इस पुत्र के द्वेष वश अपने पुत्र की रक्षा के लिए मारना चाहा था, कुलदेवी का महोत्सव कराया था। उसी समय वैताढ्य पर्वत से विद्याधर राजा इस उद्यान में आया था। पुत्र को गुणवान् और सुन्दर देख स्नेह उत्पन्न हुआ। तब हरणकर अपनी स्त्री विद्याधरी को सोंपा, उसने पालनकर बड़ा किया। जब वह तरुण हुआ तब विमान लेकर आया और अपनी माता को विलाप करते देखा और उसको स्नेह उत्पन्न हुआ और वो हरणकर अपने नगर में ले गया। जब वे उद्यान में बैठे तब एक वानरी ने इसको बोध दिया, तब इस कुमार ने असली बात अपनी विद्याधरी माता से पूछी। अब परिवार सहित संदेह दूर करने यहां आया है। यह बात केवली के मुख से नीकली की कुमार सभा में सें उठकर मुनि को प्रणाम किया। अपने माता-पिता विद्याधरों को विनय के साथ विमान सौंपा और प्रणाम किया। विद्याधर पिता ने उससे आलिंगन किया और आंसू गिराता हुआ और विलाप करता खड़ा रहा, तब गुरु ने प्रतिबोध दिया। जयसुन्दरी ने अपने पति को प्रणाम किया और अपने स्नेह का एवं पति वियोग का कारण केवली से हाथ जोड़कर पूछा-हे भगवन्! पूर्व जन्म में किस कर्म के कारण मेरे पुत्र का वियोग सहन करना पड़ा? यह सोलह वर्ष मुझे बड़े दुःख से बिताने पड़े। तब केवली ने कहा-पूर्व जन्म में तुमने शुकी के अंडे को प्रपंच कर सोलह मुहूर्त तक विरह किया था, जिससे सोलह वर्ष तक पुत्र वियोग रहा। इस संसार में जीव सुख अथवा दुःख जैसा करता है वैसा दूसरे भव में भोगता है। जो अब सुकृत करोगे तो आगे के भव में शुभ फल पाओगे।

ऐसे गुरु के वचन सुन रानी ने बड़ा पश्चात्ताप किया, राजा का भी मन दुःखित हुआ। इतने में वह रतिसुंदरी नामक रानी खड़ी होकर कुमार और उसकी माता के सामने आकर अपने कुकर्मों की क्षमा मांगने लगी और इस प्रकार लज्जित होकर नीचा

मुखकर हाथ जोड़कर बोली, हे महासती! जो मैंने तुम्हारे साथ दुश्चरित्र किया और दुःख दिया उससे मैंने बड़े दुखदाई कर्मों का बन्धन किया। इस प्रकार क्षमा मांगती हुई देख गुरु बोले तुम दोनों ने ही परस्पर ईर्ष्या छोड़कर अपने-अपने कर्मों की क्षमा मांगी और पश्चात्ताप किया। जिससे तुम्हारे बंधे हुए कर्म छूट गये।

राजा ने भी प्रणामकर केवली से पूछा, हे भगवन्! मैंने कौनसे शुभ कर्मों से यह राज्य पाया है, और उत्तम स्त्री का सुख प्राप्त हुआ है? तब गुरु महाराज कहने लगे हे नृपेन्द्र! शुक भव में तुमने श्रीजिनराज के आगे अक्षत पूजा की थी इससे तू देवलोक गया, वहा देवांगनाओं के साथ अनेक नाटकादि सुख भोगे अन्त में च्युत होकर यहां आया, तब राज्य सुख प्राप्त हुआ फिर गुरु ने पिछले भव की सारी कथा विस्तार से कही और यह भी कहा हे राजन्! तुमने पूर्व भव में श्री जिनराज की पूजा विधि पूर्वक की थी जिससे यहां राज्य सुख और आगे शाश्वत्त मोक्ष सुख मिलेगा। यह बात सुनकर राजा ने मुनिराज से कहा, हे मुनिराज! मैं अपने पुत्र को राज्य भार सोप कर चारित्र ग्रहण करना चाहता हूं।

इस प्रकार गुरु की आज्ञा लेकर अपने राज्य में गया, वहा रतिसुन्दरी के पुत्र को राज्य का काम सोंप दिया और बड़े महोत्सव के साथ दीक्षा ग्रहण की।

जयसुंदरी रानी एवं इसके पुत्र ने भी गुरु से प्रवज्या ग्रहण की; पिता के साथ विचरता है और साधु के आचार सीखता है। अन्त में राजा अपने स्त्री और पुत्र के साथ अनशन करके शुभ ध्यान से मरकर सातवें देवलोक में उत्पन्न हुआ।

वहां सुरराज ने इन्द्र का पद प्राप्त किया, दूसरी रानी ने भी दीक्षा ली और शुद्ध चरित्र पालनकर उसी देवलोक में पहुंची। दोनों माता पुत्र भी वहीं थे। इस प्रकार चारों जीवों नें वहां से च्युत होकर मनुष्यावतार लिया-अन्त में अक्षत पूजा के प्रभाव से केवल ज्ञान प्राप्तकर मुक्ति में गये।

इति श्री जिनेन्द्र पूजाष्टके अक्षतपूजायां शुक पक्षी व्याख्यानकं समाप्तम्।

आज्ञा पालन ही सब से बड़ी भक्ति।

संसार असार छोड़ो, मोह से नाता तोड़ो, प्रभु से संबंध जोड़ो।

ये भाव न जगे तब तक प्रभु भक्ति, प्रभु भक्ति, प्रभु भक्ति ही।

पूजा अष्टक भाग - २

।। जिनमती कथा ।।

इसी भरत क्षेत्र में एक मथुरा नामक नगरी थी। वह देश देशान्तर में विख्यात है, वहाँ यशस्वी, तेजस्वी, प्रतिष्ठित, सूरतेज नामक राजा राज्य करता था। सुख, शांति से उसकी प्रजा रहती थी, वहाँ सम्यग् दृष्टिमान्, विपुल सम्पदा युक्त, एक धनदत्त नामक सेठ रहता था। उसकी सुशील, पतिव्रता, श्रीमाला नामक पत्नी थी। उसकी कुक्षि से एक पुत्री जिनमती नामक उत्पन्न हुई, इसका लघु भाई, प्राणप्रिय, गुणधर नामक था, दोनों भाई बहन इस सेठ के घर के भूषण थे।

माता पिता का प्रेम प्रतिदिन दोंनो पर बढ़ता रहता था। अन्यदा पिता के मथुरा में रहने वाले मकरध्वज सेठ के पुत्र विनयदत्त के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। वह बहुत आभरण, वस्त्रादि,दास-दासी के साथ अपने ससुराल में गयी, कुछ दिनों तक पति के साथ सुख भोगती रही। एक दिन जिनमती नें अच्छे पुष्पों की माला मंगवायी और भक्तिपूर्वक श्री जिनदेव की पूजा, नित्य करने लगी। इसी अवसर में इसकी लीलावती नामक सौत (सपत्नी) ने ईर्ष्या से मिथ्यात्व हृदय में धारण करती हुई। एक दिन अपनी दासी से क्रोध के साथ कहा हे प्रिये! इस पुष्पमाला को तुम ले जाओ और वाड़ी में जाकर फेंक दो, मैं इस माला को नही देख सकती इससे मेरे नेत्रो में दाह उत्पन्न होता है। ऐसे सेठानी के वचन सुन दासी ने श्री जिनराज के ऊपर चढ़ी हुई पुष्पमाला को लेने के लिए ज्यों ही हाथ डाला त्यों ही उसने भयंकर सर्प देखा। भयभीत हुई वह वहों से दौड़ी, इतने में सेठानी ने क्रोध से उठकर उस माला को बाहर फेंकने के लिए हाथ डालने लगी त्यों ही मालाधिष्ठायक देवता ने सर्प होकर उसके हाथ को लपेट लिया, और जोर से मरोड़ने लगा। सेठानी उसकी पीड़ा से दुःखी होकर रोने लगी और ऊंचे शब्दों में विलाप करने लगी। उसकी आवाज सुनकर नगर के लोग इकट्ठे हो गये, उन्होंने यह शिक्षा दी कि तुम जिनमती के पास जाओ वह तुम्हारी रक्षा करेगी। ऐसा सुनकर बहुत दुःखित हुई, रोती हुई वह सब नगर जनों के साथ जिनमती के पास गयी।

वह जिनमती बड़ी सरल स्वभावी और अहंकार रहित थी सम्यक्त्व के रस से भरी हुई दयालु थी। निर्मल बुद्धि से सदा परोपकार करती रहती थी। इस अवसर में रोती हुई लीलावती को देखकर कृपा के रस से पूरित नवकार मन्त्र स्मरणकर उसने उसके हाथ से सर्प निकालकर अपने हाथों में पैहन लिया, वह सर्प इसके हाथ में सुगंधित पुष्प माला हो गयी। श्री जिन भाषित धर्म के प्रभाव से और निर्मल शीलव्रत पालन से देवताओं को भी वह जिनमती अत्यंत प्रिय हुई। वहाँ

इसी अवसर पर विचरते हुए युगल मुनिओं का आना हुआ और लीलावती सेठानी के द्वार पर खड़े रहे, सखियों ने सेठानी को सूचना दी, वह बाहर आकर वंदना करने लगी। मुनियोंने धर्मलाभ दिया। उनमें से बड़े मुनिराज ने लीलावती से कहा हे! भद्रे! तू मेरे हितकारी वचन सुन, मैं तुम्हारे हित की कामना करता हूं। तुम तीनों संध्याओं में उत्तम सुगन्धित पुष्पों से श्री जिनराज की पूजा किया करो जिससे देवताओं के सुख भोगकर अन्त में मोक्ष सुख पाओगी। क्योंकि शास्त्र में कहा है- जो एक पुष्प से भी भक्ति और श्रद्धा से श्री जिनराज की पूजा करता है वह मनुष्य उत्कृष्ट संपत्ति पाता है और लक्ष्मी का मालिक होता और देवसुख भोगकर मोक्ष पाता है। जो ईर्ष्या से आशातना, और जिनराज की पूजा का निषेध करता है वह नर हजारों भवों में फिरता है और कई दुःखो से सन्तप्त रहता है, इस लोक में दारिद्र दुःख भोगता है और सुख, सौभाग्य रहित होता है। जो जिन पूजा में विघ्न करता है वह दुःख का भंडारी होता है।

ऐसे मुनि के वचन सुनकर लीलावती पवन से कंपाये हुए कदली वृक्षवत् भयभीत कंपायमान हुई काँपने लगी। हे भगवन्! मुझ पापिनी ने बड़ा अपराध किया है, यह कहकर उसने माला का सब वृत्तांत मुनि से कहा। फिर विनती करने लगी हे मुनिराज! इस पाप की शुद्धि किस तरह होगी? इस पापीनी का पाप से छूटकारा कैसे होगा? यह सुन मुनिराज बोले, हे भद्रे! जिनपूजा के प्रभाव से, भाव शुद्धि के कारण पाप दूर होते हैं। ऐसे मुनि के वचन सुनकर विनय पूर्वक उठकर नमस्कार करके प्रार्थना की कि, हे भगवन्! आज से मैंने श्री जिनराज पूजा की पुष्प पूजा का यावज्जीव अभिग्रह लिया, तीनो संध्याओं में भक्ति के साथ पूजा करूंगी।

इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर जिनमती ने भाव शुद्धि से जिन पूजा की प्रतिज्ञा की विशेष दृढ़ता एवं मुनि वचन से प्रति बोध पायी हुई वह लीलावती पश्चात्ताप से तप्त शरीर वाली कई परिजन और पुरलोकों के साथ निर्मल सम्यक्त्व युक्त परम श्राविका हुई। जहां तक धन का नाश न हो, बन्धुवियोग और विविध दुःख न हो वहां तक धर्म में उद्यम करने की प्रतिज्ञा ली, इस प्रकार प्रतिबोध देकर धर्म का उपदेश देकर वे मुनिराज अन्यत्र विहार कर गये।

अब वह लीलावती तीनों समय उत्तम पुष्पों से पूजा करने लगी। प्रतिदिन श्रीजिनराज की बिम्ब (मूर्ति) पर लीलावती का अत्यन्त अनुराग बढ़ने लगा।

एक बार जिनमती माता-पिता और भाई से मिलने की उत्कण्ठा करती हुई अपने पति की आज्ञा लेकर उत्तर मथुरा नगरी में पिता के घर पर आयी। लक्ष्मी के समान उसका रूप बना हुआ देखकर माता-पिता आदि परिवार के लोग उससे मिले और प्रसन्न हुए वह भी प्रतिदिन पुष्पों से श्री जिनराज की पूजा करती थी। एक

दिन उसके भाई ने पूछा हे बहिन! इस पुष्प पूजा का क्या फल है? मुझको भी बताओ। तब जिनमती ने बड़े प्रेम से भाई से कहा, हे सहोदर! इस पूजा के प्रभाव से मनुष्य सुख, भोग, विलास, धन, सम्पत्ति, लक्ष्मी वृद्धि,शरीर की आरोग्यता और कुटुम्ब वृद्धि होती है। परभव में देवताओ के सुख, इन्द्रादि पद प्राप्त होते है; अन्त में अक्षय सुख मुक्ति प्राप्त होती है। जो मनुष्य भक्ति सहित जिनपूजा करता है, उसके इस लोक के उपसर्ग, दुष्ट, शत्रु, शान्त हो जाते हैं। हे भाई! यह फल निश्चय समझो।

इस प्रकार जिनमती का उपदेश सुनकर भाई बोला, यदि जिनपूजा का फल ऐसा है तो मैं विनय के साथ भक्ति से यावज्जीव त्रिकाल जिन पूजा करूंगा। ऐसा निश्चय जिनमती के सामने किया। तब बहन बोली, हे भाई! तू धन्य है; जिससे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई है। शास्त्र में कहा है जो प्राणी अल्पमति और हीन पुण्य होता है उसको जिन पूजा की मति नहीं होती है।

इस प्रकार दोनो भाई बहन श्री जिनराज के चरण कमल की शुश्रूषा और शुभ कार्य करते- करते समय बिताते थे, अपने नीयम के पालने में पूर्ण तत्पर रहते थें। अन्त में शुभ परिणाम से मरण पाकर दोनों देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां श्री जिनराज की पूजा के प्रभाव से प्रधान देवताई सुख भोगने लगे।

एक पद्मपुर नामक नगर था उसका राजा पराक्रमी, प्रतापी, तेजस्वी पभ नामक था, वह सुख शांति से राज पालन करता था। उसके एक पभा नाम की पटरानी था उसकी कुक्षी में देवलोक से च्युत होकर गुणधर का जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। बड़े उत्सव के साथ उसका नाम जयकुमार दिया। वह कुमार कई धाइयों से लालन पालन किया जाता हुआ पांच वर्ष का हुआ। अनन्तर गुरु के पास सकल कला और आगम सीखे। वह सर्व विद्या में निपुण होकर यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। शरीर की कान्ति और स्वाभाविक गुणों से साक्षात् देववत् ज्ञात होता है।

इन्हीं दिनों सुरपुर नामक नगर में सूरविक्रम नामक राजा राज्य करता था, उसकी स्त्री राजवल्लभ लक्ष्मी जैसी रूपवती श्रीमाला नामकी थी। इसकी कुक्षी में जिनमती का जीव देवलोक से च्युत होकर पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने सभी कुटुम्बी जनो की निमन्त्रणाकर विनय गुण सहित, सरोवर में राजहंसी के समान रमण करने वाली उस कन्या का नाम विनयश्री स्थापन किया। पुत्री के गुण लक्ष्मी और पार्वती के समान सर्वत्र प्रसिद्ध होने लगे। रूप और लावण्य से बड़े योगियों को भी चलाय मान करती थी, तो नगर के लोग उसको देखकर मोहित हो इसमें कुछ विशेषता नहीं।

अब वह कन्या माता - पिता को अत्यन्त प्रिय होती हुई यौवनावस्था को प्राप्त हुई, माता ने उसको विवाह योग्य शृंगार कराकर राजसभा में राजा के पास भेजी, वह राजकुमारी मनुष्यों का मन हरण करती हुई सभा मण्डप में राजा की गोद में बैठ गयी, राजा ने प्यारकर, मस्तक पर चुंबन किया और इसकी यौवनावस्था देखकर चिन्ता समुन्द्र में डूब गया। अन्त में धैर्य धारणकर विचार करने लगा यह कन्या रत्न किसको दूं। मुझे तो इसके योग्य गुणी वर पृथ्वी मण्डल में नहीं दिखता।

इस प्रकार पिता को उदास देखकर राजपुत्री बोली-हे पिताजी! आप चिन्ता मत करे। भूमण्डल के समस्त राजकुमारों को आमन्त्रित कीजिए, मैं अपने चित्त के अनुसार अपना पति ग्रहण कर लूंगी। यह सुनकर राजा बोला, हे वत्से! जैसा तेरा मनोरथ है वैसा ही कार्य होगा, ऐसा कहकर पुत्री को माता के पास भेज दी।

अनन्तर राजा ने मुहूर्त दिखाकर देश देशांतरो के राजकुमारों को बुलावा भेजा। मनोहर, विशाल स्वयंवरमण्डप बनाया और वहाँ राजा राजकुमारों के नामांकित सिंहासन स्थापित करवा दिये। राजकुमार आ आकर उसपर बैठने लगे। राजकुमारी भी शृंगार करके स्वयंवर मण्डप में आयी, सखियों का परिवार और प्रतिहारी (परिचय करानेवाली) साथ थी। सब कुमारों पर इसकी दृष्टि पड़ी लेकीन उनमें से कोई इसको नहीं रूचा। प्रतिहारी जिस जिस राजकुमार के गुण और देश समृद्धि का वर्णन करती है, उसमें भी दोष निकालती, विरक्त होकर आगे चल देती, परन्तु किसी राजकुमार को अंगीकार नहीं किया।

राजा ने राजकुमारी का चित्त विरक्त जानकर अन्य राजकुमारों के चित्रपट (तस्वीरवाला कपड़ा) तैयार कराकर राजकुमारी का अभिप्राय लिया, परन्तु उसने अपनी दृष्टि फेर ली। उसका मन किसी भी राजकुमार पर अनुरक्त नहीं हुआ। शास्त्र में कहा है-जिस प्राणी के साथ पूर्व भव का स्नेह हो उस पर ही अपना स्नेह बढ़ता है अन्य पर नहीं।

राजा अतीव चिन्तातुर हो चित्त में संताप रखता हुआ विचार करता है कि क्या इस संसार में कुमारी के लिए विधाता ने वर पैदा नहीं किया? इतने में राजा ने जयकुमार का रूप चित्र में लिखवाकर राजकुमारी को दिखाया, देखते ही बड़ी हर्षित हुई, स्नेह की दृष्टि से बार-बार देखने लगी। राजा राजकुमारी का अनुराग देखकर प्रसन्न और विचार करने लगा, हंसनी का प्रेम हंस पर ही होता है परन्तु हंस को छोड़कर वो कौऐ से प्रेम नहीं करती। इस प्रकार योग्यता जानकर अपने मंत्रियों को बुलाया और पभपुर में पभराज राजा के पास उनकों भेजा।

मन्त्री लोग भी शीघ्र ही पभपुर पहूंचे और पभराजा को प्रणामकर कहने लगे, हे महाराज! हम सुरपुर नगर के स्वामी के भेजे हुए यहां आये है। सूरविक्रम

राजा ने यह समाचार हमारे साथ कहलायें है की मेरी सर्वांग सुन्दरी, गुणवती नामक पुत्री है वो आपके पुत्र को दी है। ऐसे वचन सुनकर राजा संतुष्ट होकर बोला हे मन्त्रियों! ऐसा कौन है संसार में जो आयी हुई लक्ष्मी का निषेध करे? यह राजकुमारी लक्ष्मी के समान है इसका लाभ हमारे लिए अत्यंत शुभदायक है। जयकुमार पिता के वचन सुनकर पूर्वस्नेह से संतुष्ट हुआ, बाद उस राजा ने मंत्रियों का सम्मान कर विदा किया। वे भी विवाह का दिन कहकर अपने नगर में आयें और अपने स्वामी को सब वृतान्त कह दिया।

पभरथ राजा ने अच्छा मुहूर्त देखकर शुभ दिन में जयकुमार को विवाह निमित्त भेजा वह भी बड़े ठाठ से सुरपुर में आया। तब सुरविक्रम राजा ने बड़ा भारी उत्सव करके बधाई दी और उसका पुर प्रवेश करवाया।

जयकुमार उत्कृष्ट विवाह मुहूर्त में मंगल बाजे बजने पर विवाह मण्डप में आया और उसने राजकुमारी का पाणिग्रहण किया, विवाह कार्य होने के बाद हथलेवा छोड़ा उस समय राजा ने हाथी, घोड़े, रथ, दास, दासी, वस्त्र, आभूषण और मणि माणिक्यादि, सोना, चांदि आदि उत्तम पदार्थ दिये और रहने को आवास दिया-उसमें रहकर पांच प्रकार के विषय सुख भोगने लगे। वहां रहते बहुत दिन बीत गये।

कुछ समय बाद राजकुमार के कहने पर राजा ने महोत्सव के साथ उसको अपने घर विदा किया । वह जयकुमार अपनी पत्नी के साथ चला। चलते-चलने एक वन में पहुंचा, वहां कई साधुओं के परिवार सहित एक आचार्य भगवंत को देखा। वे आचार्य श्वेत वस्त्र धारक और निर्मल चार ज्ञान के धारक थे। जिनके दांतो की कान्ति धवली थी, नाम भी उनका निर्मल था।

ऐसे आचार्य को वन में देखकर विनयश्री ने अपने पति से कहा, हे स्वामिन्! यह बड़े ज्ञानी मुनि मालूम होते हैं भक्ति और विनय के साथ इनको वन्दन करें ऐसे वचन सुनकर विनयी राजकुमार ने अपने सेनादिक परिवार सहित मुनिराज को वन्दना की। मुनिराज ने धर्मलाभ दिया, तदन्तर संसार सागर से तारिणी धर्म देशना दी। फिर मुनि ने जयकुमार और विनयश्री का नाम लेकर कहा कि तुम्हारा आना ठीक हुआ तुमको धर्म की प्राप्ती हो।

इस प्रकार मुनिनायक के वचन सुनकर अपने हृदय में विस्मित हुई विनयश्री इस तरह विचार करने लगी। ये मुनि हमारे नाम कैसे जानते है? फिर धीरज धारण किया कि जो ज्ञानी है उनका क्या आश्चर्य? उनसे कोई बात छिपी नहीं। दोनों ही के मन में पूर्वभव की बात सुनने का कौतूहल उत्पन्न हुआ। श्री वीतराग का धर्म दोनों ने सुना इतने में मुनिवर से प्रणामकर जयकुमार ने पूछा, हे भगवन्? मैने

कौनसा पुण्य पूर्वभव में उपार्जन किया है जिससे मैंने निर्मल मनोवांछित सुख राज्य सुख प्राप्त किया है। आप कृपा कर मेरे पूर्वभव का सम्बन्ध कहिए।

ऐसा सुनकर ध्यानी और ज्ञानी आचार्य ने कुमार के पूर्वभव का वृतांत प्रारंभ किया। हे महा यशस्वी! तुम पूर्व भव में एक व्यापारी के पुत्र थे। जिनमती तुम्हारी बड़ी बहिन थी, तुमने एक बार उसे त्रिकाल पूजा करती देखकर पूछा, उसने पूजा का महत्त्व बताया। तुमको पूर्ण श्रद्धा हुई, और तुमने भी श्रीजिनराज की पूजा त्रिकाल करनी प्रारंभ की । उस जिन पूजा के प्रभाव से तुम दोनों देवलोक में उत्पन्न हुए। वहां देव सम्बन्धी सुख भोगकर वहां से च्युत होकर ऐसा बड़ा राज्य और ऋद्धि पायी है। फिर-आगे देव एवं मानव भव के सुख प्राप्त करोगे। तुम कृतपुण्य हो, जन्मांतर में तुमने श्रीवीतराग की भक्ति की है इससे अन्त में अविचल मुक्ति सुख भी पाओगे।

यह दोनों ज्ञानी के मुखसे श्रीजिन पूजा का प्रभाव और पूर्वभव का सम्बन्ध सुनकर अत्यंत हर्षित हुए। कुमार ने विनय पूर्वक प्रार्थना की हे भगवन्! मेरी बड़ी बहन अब कहाँ है? जिसके साथ मैंने पूजा का फल उपार्जन किया था।

मुनिपति कहने लगे "हे कुमार ! वह भी सौधर्मेन्द्र देवलोक के सुख भोगकर इस कर्म प्रभाव से तुम्हारी गृहिणी हुई है।"

ऐसे आचार्य के मुख से अपना चरित्र सुनकर राजकुमार और विनयश्री को मुनि के प्रभाव से जातिस्मरण ज्ञान हुआ उससे दोनों अपने पूर्व भव के संबंध को याद किया। जैसे गुरु ने दर्शाया था। दोनों ही सावधान होकर हाथ जोड़कर आश्चर्य से कहने लगे, हे भगवन् ! जैसा वचन आपने कहा वह सत्य है, हमने भी पूर्व का संबंध जाति स्मरण ज्ञान से जान लिया है।

अब लज्जित हुई विनय श्री कहने लगी, हे स्वामिन् में कहां जाऊं और क्या करूं? जो मेरे पूर्व भव का भाई था वह अब भर्तार हुआ। इसलिए मेरे जन्म को धिक्कार है और इस राजलक्ष्मी को भी धिक्कार है, जिससे मुझसे लोक विरुद्ध, निंदित कार्य हुआ। इस तरह पश्चात्ताप करती विनयश्री को मुनि ने कहा, हे भद्रे! तुम मन में दुःख मत करो, क्योंकि संसार में जीव कभी भर्तार होवे, कभी स्त्री, कभी पिता, कभी पुत्र, ऐसी कर्म की महाविषम अवस्था है इससे मन में खेद मत करो। इस प्रकार गुरु वचन सुनकर विनय श्री बोली हे मुनिवर! आपने कहा सो सत्य है,जो अज्ञानता से करे तो दुःख नहीं परन्तु जो आत्मा का हित चाहे वह जान बुझकर करे वो संसार में अत्यंत दुःख पावे।

इसलिए मैं अपने पूर्वभव के भाई के साथ संसार सुख भोगना नहीं चाहती हूं अब मैं यावज्जीव ब्रह्मव्रत का निश्चय करती हूं, अर्थात् जीवनपर्यंत अखंड

शीलव्रत का पालन करूंगी। इसलिए, हे भगवन्! मुझे दीक्षा दीजिए जिससे संसार के दुःखो से मुक्त हो अविचल सुख को प्राप्त करूं!

ऐसे विनय श्री के वचन सुनकर आचार्य बोले हे भद्रे ! तुझको धर्म कार्य करना उचित है तभी तेरा ज्ञान सफल होगा अन्यथा नहीं। ऐसा वैराग्य युक्त उपदेश, अमृतधारावत् सुखकारी, गुरुवचन सुन जयकुमार भी इस प्रकार कहने लगा, हे भगवन्! धिक्कार है इस संसार को जो मेरी बड़ी बहन मरकर स्त्री हुई। इस बात से मैं भी विरक्त हुआ हूं, परन्तु दीक्षा पालन करने की मेरी शक्ति नहीं है, इसलिए मैं क्या करूं? हे स्वामिन् मुझको भी उचित उपदेश दो। तब गुरु बोले हे भद्र! तुम श्री वीतराग की दीक्षा पालन करने में असमर्थ हो तो श्रावक व्रत का अंगीकार करो। विनयश्री ने गुरु के पास से विधान पूर्वक दीक्षा ली और विषय सुख से निरपेक्ष हो गयी। जयकुमार ने गुरु के पास से विधिपूर्वक श्रावक धर्म का स्वीकार किया। वह कुमार विनय श्री को क्षमा पूर्वक नमस्कारकर, श्री गुरु के चरणकमल में वन्दनकर अपनें नगर में चला गया। वहां श्री जिनभाषित धर्म को ग्रहणकर पालन करने लगा।

अब वह विनयश्री साध्वी सुव्रता नामक साध्वी के पास आचार - विचार सीखने लगी और शुद्ध दीक्षा पालने लगी।

अन्त में ध्यान, तप और समाधि के योग से केवल ज्ञान को प्राप्त हुई। फिर भूमण्डल में विचरती हुई गांव - गांव नगर - नगर में बहुत से भव्य जीवो को प्रति बोध देती हुई केवल ज्ञान की महिमा फैलाने लगी। अन्त में शुभ अध्यवसाय से आयु पूर्णकर मुक्ति के अखंडित शाश्वत सुख को प्राप्त हुई।

इतिश्रीजिनेन्द्रपूजाष्टके परिमलबहुलकुसुममालापूजायां वणिक्सुता जिनमतिव्याख्यानकं चतुर्थकथानकं सम्पूर्णम्।

संसार भूला जाय, आत्मानंद के झूले में झूले। मन प्रफुल्लित बनें। मुझे मिला अब जोग जिन भक्ति का। करूं प्रतिदिन अष्टप्रकारी पूजा। करूं व्यय द्रव्य का स्व शक्ति से।

जिनमती धनश्री की कथा

इसी भरत क्षेत्र में शोभायुक्त, पृथ्वी मंडल में प्रसिद्ध मेघपुर नामक नगर था,वहां अनेक प्रकार के महल, मालिया, गवाक्ष होने से स्वंग सदृश्य था। उस नगर में नरनाथ मेघ नामक राजा राज्य करता है। राजा सर्व जगत् में प्रसिद्ध, प्रतापी और यशस्वी था, उसके वैरी गज समान थें और वह सिंह समान था।

उसी नगर में एक गुणवान्, श्री वीतराग चरण कमल सेवक सम्यग्दृष्टि, विरदत्त नामक सेठ रहता था। उसके घर में शीलभूषण, जिनर्धमरक्त, निर्मल गुणगुणालंकृत शीलवती नामक भार्या थी, उसकी कुक्षी से सम्यक्त्व धारक, गुणवती, जिनमती नामक पुत्री उत्पन्न हुई। वहां धनश्री नामक व्यवहारी की पुत्री है उसके साथ इस जिनमती का स्नेह और सखीभाव है, वह सम्यक्त्व को धारण करती थी, बुद्धि में तेज थी, इन दोनों के आपस में प्रेम बहुत था। एक के सुखी होने पर दूसरी भी सुखी रहती और दुःखी होने पर दुःखी होती। इनका रूप, गुण, सौभाग्य, अवस्था भी सदृश थी।

इस प्रकार उन दोनों की प्रीतिलता एक साथ बढ़ती थी,एक दिन जिनमती श्री वीतराग के मंदिर में श्री जिनपूजा करके सायंकाल को दीप पूजा करती थी। यह देख धनश्री बोली, हे प्रिय सखी ! इस दीप पूजा का क्या फल है? मैं भी त्रिकाल दीप पूजा करूं? ऐसे वचन सुन जिनमती बोली, हे भद्रे! पर प्रभु भक्ति से दीप पूजा करता है वह मनुष्य सुख और देव सुख पाकर अनुक्रम से मुक्ति का सुख भी पाता है और दीप पूजा से अपने देह में निर्मल बुद्धि उत्पन्न होती है। जो अखण्ड मन परिणाम से श्री वीतराग के आगे विधि पूर्वक दीप पूजा करता है, वह जीव अनेक प्रकार के रत्न, मणि, माणिक्यादि पाता है, जो परम भक्ति से दीपपूजा करता है वह अपने भव-भव के पाप रूपी पतंगों को दीपकवत् जला देता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। यह सुनकर धनश्री ने दीपक पूजा का प्रारंभ किया और श्री जिनराज की भक्ति में निश्चल हो गयी।

वह प्रतिदिन श्री जिनराज के आगे मंडल की रचनाकर दीप स्थापन करती थी, और जिनधर्म में दृढ़ रहती थी। इस प्रकार वे दोनों सखियाँ प्रतिदिन दीपकपूजा त्रिसंध्याओं में करती हुई अत्यंत भक्ति राग से परिपूर्ण हो गयी। दोनों एक चित्त से जिनधर्म का पालन करती थी।

एक दिन धनश्री ने अपने आयु का अन्त किसी प्रकार से जान लिया। जिनमती के वचन से अनशन व्रत धारणकर लिया, विधि पूर्वक अनशन पालन

कर निर्मल लेश्या से पंच परमेष्ठि महामन्त्र का स्मरण किया। अन्त में आयु पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुई; वहाँ देव सुख भोगने लगी। इसके विरह दुःख में संतप्त जिनमती श्री जिनराज की दीपपूजा में विशेष उद्यम करने लगी। एक दिन आयु के अन्त में विधिवत् अनशन व्रत धारणकर आयु पूर्णकर उसी सौधर्म देवलोक में जहां देवी धनश्री का विमान था, वहां ही देवी उत्पन्न हुई, बड़ी ऋद्धि, परिवार, दिव्य सुख प्राप्त हुआ। इस देवी ने अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव का स्नेह देखा और दोनों देवियां मिली और पूर्ण प्रेम से रहने लगी। एकदा वे देवियाँ अपने ऋद्धि का समुदाय देखकर विस्मित हुई, उन्होने विचार किया की हम दोनों ने कौन से सुकृत से ऐसी अनुपम ऋद्धि पायी? उपयोग देकर अवधिज्ञान से जाना कि पूर्वभव में श्रीजिनराज के सामने दीपपूजा की थी उसका यह फल मिला है। और यह इच्छित देवसुख भोगती है। इस तरह विचारकर यहां मेघपुर नगर के पास श्री ऋषभदेव स्वामी का प्रधान, रमणीय मंदिर था,वहां आयी और आकर हृदय में प्रसन्न हुई और उस मंदिर की उन्होने अद्भुत रचना की, उसको नीचे लिखते हैं।

मन्दिर रचना वर्णन

स्फटिक रत्न के पत्थर की शीलाऐं बाहर भीतर लगी है, स्वर्णमय स्तंभ, जिनमें मणि और रत्न जड़े है। ऊपर नवीन सुर्वणमय ध्वजाओं से शोभायमान था, अग्नि में तपाये हुए कनकमय दण्ड उनमें लगे थे। ध्वजाओं के ऊपर पुष्प मालाएँ विराजमान थीं, कलशों के उपर रमणीय रत्न प्रदीप देदीप्यमान थे, जिन भवन के उपर सुगन्धित पंचवर्णी पुष्पो की वर्षा और सुवासित जलवृष्टि होती थी। जिससे उसकी महिमा अवर्णनीय थी। उन दोनों देवियों ने श्री ऋषभदेव स्वामी के मंदिर में चारों तरफ तीन प्रदक्षिणा की, भीतर प्रवेशकर स्तुति करना शुरू की। फिर बार-बार श्री जिनराज को प्रणाम करके भक्ति से हृदय में हर्ष धारण करने लगी। अन्त में बहुत महिमा करके अपने देवलोक में गयी। वहों रहती हुई वे दोनों देवी यथेच्छ सुख भोगती थी।

अब धनश्री अपने देव आयु को पूर्णकर च्युत होकर मेघपुर राज्य में राजा मकरध्वज राज्य करता था उसकी पटरानी कनकमाला नामकी हुई, वह पृथ्वी भर की स्त्रियों में तिलक समान रूपवती थी दूसरी स्त्री उसके समान नहीं थी। राजा को वह रानी प्राणों से भी प्यारी थी। इस राजा की एक रानी दमितारी नामकी थी परन्तु वह रोग से पीड़ित हो परभव के दोष से मरकर राक्षसी हुई।

यह राजा कनकमाला के साथ विषय सुख भोगता था, दौगुन्दक देवता के समान रात दिन जाते हुए मालूम ही नहीं होता था। जहां रानी का वास घर था वहां रात्रि को भी सूर्य के समान प्रकाश रहता था,क्योंकि रानी के शरीर की कांति

देदीप्यमान रहेती थी।

एकदा राजा को रानी के साथ विषय सुख भोगता देख राक्षसी कुपित हुई। अर्धरात्रि के समय रानी के वासगृह में प्रवेश करने लगी परन्तु सूर्य समान रानी के तेज से मन्द हुई, क्रुद्ध होकर राजा के पास आयी, राजा ने बड़ी दाढ़े, दांतवाली भयानक मुखी, विकराल नेत्रवाली, उस राक्षसी को देखी। राजा को देखते ही उसने वैक्रिय रूप से सर्प का रूप बनाया और वह सर्प राजा के ऊपर उपद्रव करने को उद्यत हुआ, परन्तु रानी के तेज से निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर पड़ गया। उस सर्प का बल नहीं चला। अपनीं आंखे मींच ली, शरीर संकुचित कर लिया। फिर बार-बार क्रोधरूपी अग्नि से जलता हुआ उठा और भयानक शब्द करने लगा। उसकी शक्ति मन्द हो गयी। यह कठिन उपसर्ग राजा-रानी को हुआ तो भी वे दोनों चित्त में क्षोभ को धारण नहीं करने लगे और उठकर देखें तो रानी के तेज से सर्प मूर्च्छित हुआ पड़ा है। इस अवसर में राक्षसी ने क्रोधकर अनेक उपद्रव किये परन्तु कनकमाला सत्य से चलायामान नहीं हुई।

उसके बाद रानी का साहस देख सन्तुष्ट होकर राक्षसी ने अपना मूलरूप धारण किया और बोली "हे वत्स मैं तेरे पर प्रसन्न हुई हूं, मांग, इष्ट वर मांग, मैं देती हूं, ऐसे राक्षसी के वचन सुनकर रानी कनकमाला बोली, हे भगवती! यदि तू मेरे पर प्रसन्न हुई है तो एक धर्म कार्य कर, रत्न जड़ित स्वर्णमय श्री वीतराग का मंदिर बना। यह वचन अंगीकारकर राक्षसी अपने स्थान को वापस गयी।

जब रात्रि व्यतीत हुई, दुष्कर समय भी व्यतीत हुआ, प्रातःकाल राजा रानी सुख शय्या से जाग गये, अपने महल के झरोखे से देखा तो क्षण भर में रात्रि के समय देवमंदिर समान उस राक्षसी ने जिनप्रासाद बनाया है, नगर के लोग उठकर कहने लगे यह भवन कनकमाला रानी ने अपनी पूजा के लिए बनाया है। ठीक राजभवन के झरोखो के सामने श्री वीतराग भगवान् की प्रतिमा है रानी अपने महल में बैठी हुई प्रतिदिन दर्शन करती थी। रात्रि होते ही रतिविलास में लग जाती है, इस प्रकार से करते-करते उसका समय व्यतीत होता है।

इस अवसर में देवलोक से वह जिनमति देवी कनकमाला रानी को प्रतिबोध देने के लिए आयी और रात्रि के पिछले प्रहर में उससे कहा, हे कृशोदरी ! तु क्या क्रीड़ा करती है? देख पूर्वभव में श्री ऋषभदेव स्वामी का मंदिर बनवाया और दीप पूजा की थी उसका यह फल है। इस प्रकार प्रतिदिन आकर प्रतिबोध देती थी रानी ने यह बात सुनी और आश्चर्य प्राप्तकर विचार करने लगी, यह कौन है? जो मुझे प्रतिदिन आकर उपदेश देता है? जब कोई अतिशय ज्ञानी मुनि आयेंगे तो इसका कारण अवश्य पूछूंगी। इतने में एक दिन ज्ञानी मुनिवर बहुत साधु परिवार सहित

आयें, उनका नाम श्री गुणधर आचार्य था। वे अतिशयवंत ज्ञान को धारण करते थे। उस नगर के पास उद्यान में आकर निवास किया। यह समाचार जब कनकमाला को श्रवणगोचर हुए तब राजा को साथ ले बड़ा महोत्सव कराके गुरु को वन्दन करने गयी, विधिवत् वन्दना की आचार्य भगवंत ने धर्मोपदेश दिया, अन्त में हाथ जोड़कर रानी ने संदेह पूछा, हे भगवन्! प्रतिदिन प्रातः अर्थात् रात्रि के पिछले प्रहर में आकर कोई कहता है कि तू क्या क्रीड़ा करती है? इत्यादि मुझे कौन कहता है? क्यों कहता है? सो आप कृपा करके कहो।

यह सुनकर गुरु ने उसका पूर्वभव कहना प्रारंभ किया, हे भद्रे! तुम दोनों पूर्व जन्म में जिनमति और धनश्री नामक सखियां थीं, तुम दोनों ने ही जिन भगवान् के मंदिर में दीपपूजा की थी, उसके प्रभाव से दोनों देवलोक में गयी, वहां देव सुख भोगकर धनश्री का जीव च्युत होकर इस राजा की भार्या कनकमाला हुई, तुझको प्रतिबोध देने को वह जिनमति देवी प्रतिदिन आकर उपदेश देती है वह भी च्युत होकर यहां तेरी सखी होगी। इस भव में तुम दोनों तप, शील, संयम का आदरकर सर्वार्थ सिद्ध देवलोक में देवता होओगी। फिर तुम दोनों सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्युत होकर यहां मनुष्य अवतार लेकर अत्यन्त सुख भोगकर अन्त में चारित्र ग्रहणकर कर्म का क्षय करके उत्कृष्ट गति सिद्धि के शाश्वत सुख पाओगी। जो तुमने श्री जिनेन्द्र भगवान की दीपपूजा की है इस प्रभाव से मनुष्य सुख ,देव सुख और अन्त में निर्वाण सुख पाओगी इसमे लेश मत्र भी सन्देह नहीं है।

ऐसे आचार्य के वचन सुनते ही रानी को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, उसने अपने पूर्वभव का सम्बन्ध जानकर कहने लगी, हे भगवन्! जैसा ही आपने मेरा पूर्वभव का चरित्र कहा वैसे ही जातिस्मरण ज्ञान से मैंने अपना पूर्वभव जान लिया है। यह कहकर श्रीजिन धर्म का आदर किया और भक्ति और विनय से धारण किया।

सभा का अवसर जानकर राजा रानी दोनों उठे और अपने घर गये। रात्रि के समय फिर वहीं जिनमती देवी आयी और कहने लगी, हे भद्रे! तुमने अच्छा किया जो जिनधर्म को अङ्गीकार किया। अब मैं भी देवलोक से च्युत होकर उसी नगर में सागरदत्त नामक सार्थवाह के यहां पुत्री होऊगीं तुम मुझे प्रतिबोध देना, यह कहकर देवी अपने स्थान में चली गयी और शेष देवसुख भोगने लगी।

इधर रानी भी मनुष्य सुख आनन्द के साथ भोग रही है इतने में वह जिनमति देवी च्युत होकर उसी नगर में सार्थवाह सागरदत्त की तुलसा नामक सेठानी की कुक्षी में उत्पन्न हुई, माता-पिता ने उत्सवकर उसका नाम सुदर्शना दिया। वह बढ़ती-बढ़ती जब यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब एक दिन श्री जिन

मंदिर में कनकमाला से मिलाप हुआ, तब रानी ने कहा, हे बाई! यह मंदिर अपन दोनों ने बनवाया है, देख स्वर्ण कलश के ऊपर रत्न प्रदीप रक्खा है, अपन ने श्री ऋषभदेव स्वामी के दर्शन कई बार किये हैं और पहिले दीपपूजा की थी यह उसका प्रभाव है, जो अपन दोनों धन, ऋद्धि भोग रही है।

ऐसे वचन सुनते ही सुदर्शना विचार करने लगी, विचार करते करते उसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे उसने पूर्व भव का सारा अधिकार देखा और कहा, हे स्वामिन् ! अच्छा किया जो तुने मुझे प्रतिबोध दिया, यह कहकर अत्यन्त स्नेह के साथ मिली। दोनों ने उत्तम कुल में श्रावक व्रत का पालन किया, अन्त में चारित्र ग्रहणकर शुद्ध परिणामों से आयु पूर्णकर सर्वार्थसिद्ध विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहां देव सुख भोगकर च्युत होकर इस मनुष्य भव में सुख पाकर अन्त में कर्म क्षय करके मोक्ष की ऋद्धि प्राप्त की।

यह श्री जिन पूजा का महात्म्य कहा है जो भव्य प्राणी दीपपूजा करता है उसको इन दोनों सखियों के जैसे सुख, संपदा मिलती है।

इति श्रीजिनेन्द्रपूजाष्टके दीपपूजाविषये पञ्चमीजिनमतीधनश्रीकथासम्पूर्णम्।

जिनपूजा पूजक को पूजनीय बनाने का एक महा मंगलकारी साधन है।

जिनपूजा निज पूजा है।

स्वयं के आत्म स्वरूप को प्रकट करने का अतीव सुंदर माध्यम है।

अनंत आत्माएँ जिनपूजा से अनन्त ठाण को प्राप्तकर अनन्त सुख का उपभोग कर रही हैं।

भावपूजा में भावों की अभिवृद्धि करानेवाली द्रव्यपूजा है।

अथ हालिक कथा

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में क्षेमा नामक प्रधान नगरी थी, वह सुरपुरी समान एवं अनेक मंदिर, प्रासादों से देवमंदिरवत् शोभायमान थी। वह नगरी सूर्य समान तेजस्वी थी जैसे सूर्य के तेज से अन्धकार नष्ट होता है, इसी प्रकार अपने तेज से शत्रुओं को नष्ट कर देती है। वहां प्रतापी, तेजस्वी, राजशिरोमणी, शूरसेन नामक राजा राज्य करता था।

उस देश के पास ही एक धन्ना नामक पुरानी नगरी थी। वह भी इसी राजा के अधीन थी। जिसको उसके पूर्वजो नें बसायी थी वहां एक छोटा राजा सिंहध्वज नामक रहता था, वह बड़े धैर्य और शूरता से राज्य पालता था।

एकदा नगरी के प्रवेश मार्ग पर एक मुनिराज ध्यान में निश्चल होकर बैठकर, तप करने का निश्चयकर, अभिग्रह लेकर, नियम में अटल और अचल होकर सूखे वृक्ष के जैसे कायोत्सर्ग (काउसग्ग) में लीन होकर ध्यान में निश्चल होकर तप करने लगे। नगरी के लोग आते-जाते उस साधु को अपशुकन जानकर घृणा करने लगे। साधु निश्चल तप करता था। जब राज पुरुषो को भी साधु की अवहेलना करते देखा तो पापी पामर लोग साधु के मस्तक पर मुष्टी प्रहार करने लगे, मुनिराज को यह उपसर्ग हुआ, तो भी ध्यान में मेरु पर्वत की तरह निश्चल रहे धैर्य धारण कर लिया।

साधु की मरणान्त अवस्था प्राप्त हो गयी। इस अवसर पर मुनि नें अत्यंत तीक्ष्ण उपर्सग सहन किया और घनघाती कर्म का क्षयकर केवलज्ञान को प्राप्त किया और शैलेशी करण पर चलकर परम पद को प्राप्त किया। वे मुनिराज महात्मा साधु अन्तकृत् केवली हो गये, अन्त में मुक्ति पद प्राप्तकर शाश्वत सुख के भागी हुए।

लोगों का उपद्रव देखकर नगर के क्षेत्राधिष्ठायक देव ने साधु की महिमा बढ़ाने के लिए क्रोध धारण किया, और नगर के लोगो को महाअपराधी जान, बड़े उपर्सग करते हुऐ लोगो की उसने विडंबना की, कई रोग जैसे मरी, हैजा इत्यादि प्रवृत्त हो गये, नगर के लोग दुःखी हो गये। राजा ने नगर के प्रधान लोगों को बुलाकर कहा, यह कोई देव का उपद्रव है सो आराधना करो तो जिससे शान्ति हो। जब सबने आराधना की तब नगरअधिष्ठाता देव संतुष्ट होकर बोला, हे लोगो! तुम इस नगर को खाली कर दो और दूसरी जगह बसाओ, जिससे तुम्हारा कुशल हो। राजा ने उस देव के वचन अनुसार दूसरी जगह पूर्व दिशा में नगर बनाया और

उसका नाम क्षेमापुर रखा इससे सारे उपद्रव शान्त हुए।

यहां पुराना नगर शून्य था, वहां एक ऋषभदेव स्वामी का मंदिर था। वहां उस देव ने सिंह का रूप धारणकर निवास किया। पापी दुष्ट पुरुष को मंदिर में आने नहीं देता था।

एक युवा पुरुष हाली किसान उस नगर का वासी दारिद्र से दुःखी होकर खेती करने का काम करता था, वह खेत मंदिर के सामने था, प्रतिदिन हल चलाया करता था। उसकी स्त्री दुपहरी में अरस-विरस अन्न लेकर आती थी, वह जैसै तैसे खाकर अपना गुजारा करता था। आहार में घी, तैल की तो बास भी नही थी। इस प्रकार बड़े कष्ट से दिन बिताता था।

एक समय उस हाली ने आकाश मार्ग से उस मंदिर में उतरते हुऐ एक चारण मुनि को देखा,वह मुनि भी श्री ऋषभ देव स्वामी के दर्शन और स्तुति करते थे। हाली को मुनि के दर्शन से हर्ष उत्पन्न हुआ और वह हल छोड़कर मंदिर में आया और एक तरफ बैठे हुए मुनि को बड़े हर्ष के साथ प्रणाम किया और विनय के साथ हाथ जोड़कर बोला हे महाराज! मैंने यह मनुष्य भव बड़ी कठिनता से पाया है, परन्तु बड़ा दरिद्र हूं दिन-रात बड़े दुःख से पीड़ित रहता हूं। इस कारण धर्म क्रिया का उदय नहीं हुआ।

ऐसे दीन वचन हाली के सुनकर मुनि बोले-हे भद्र! तुमने पूर्वभव में धर्म का आदर नहीं किया और न गुरु भक्ति की, और न साधु को सुपात्र दान दिया। इससे इस जन्म में भोग रहित हुआ और दरिद्रता से पीड़ित रहता है, परन्तु कोई शुभ परिणाम से यह मनुष्य भव मिल गया है।

ऐसे मुनि के वचन सुनकर वह हाली पृथ्वी में मस्तक लगाकर सब अंग झुकाकर बोला ! आज से जो आहार मुझे मिलेगा उसमें सें श्री जिनराज को अर्पणकर और सुपात्र साधु का योग होगा तो उनको पात्र में देकर पीछे मैं भोजन करूंगा। यह मेरा दृढ अभिग्रह है। मुनिराज ने ऐसे निश्चल वचन सुनकर कहा, हे भद्रे! यह बात तुमको योग्य है, श्रद्धा और भक्ति से कार्य करते रहना, जिससे इस भव में राज्य सम्पत्ति मिलेगी और परभव में शाश्वत सुख मिलेगा। इसमें संदेह नहीं। ऐसा कहकर मुनिराज आकाश में उड़ गये।

हाली भी खड़ा-खड़ा देखता रहा और उसने वन्दना की। मुनिराज अपने इष्ट देश को चले गये। अब वह हाली वहा रहता प्रतिदिन इस तरह करने लगा, जब उसकी स्त्री भाता लेकर आती तब उसमें से थोड़ासा श्री जिनराज के आगे समर्पण करता और पीछे खुद खाता। इस प्रकार करते-करते कई दिन व्यतीत हो गये। एक दिन बहुत भूख लगी, तो भी उसका भाता नहीं आया-बहुत समय बीत

गया, यह भूख से व्याकुल होकर अपनी स्त्री की राह देखने लगा। इतने में वह स्त्री भाता लेकर आयी, जब उसने कवल (ग्रास) लेकर अपने मुँह में डालने लगा तो उसी समय अपना नियम याद आया, इसने ग्रास को अलग रक्खा और दूसरा अन्न लेकर नैवैद्य अर्पण करने को श्री जिनराज के मन्दिर की तरफ चला।

इस हाली के सत्त्व की परीक्षा करने के लिए नगरअधिष्ठाता देव सिंह रूप से धरकर मंन्दिर के सामने बैठा है। यह देखकर हाली मन में विचार करने लगा, अब कैसे किया जाय, यदि नहिं जाऊँ तो नियम भंग होता है और नैवेद्य धरे बिना भोजन केसे करूं।? ऐसा सोचकर साहस रखकर, चाहे मरण हो या जीवन रहो नियम का पालन करना ही है, ऐसा दृढ़ निश्चयकर आगे चला। यह जैसे-जैसे आगे पैर रखता गया वैसे-वैसै देव ने अपने पैर पीछे हटायें, इस प्रकार धीरज के साथ मन्दिर में प्रवेशकर श्री जिनराज को प्रणामकर सामने नैवैद्य उसने रख दिया; इतने में वह सिंह अदृश्य हो गया। हाली भक्ति से भरे अंग से राग के साथ नैवेद्य रखकर नमस्कारकर अपने स्थान को गया, उसी समय कोई तपस्वी साधु दिखायी दिये, उनको बुलाकर उसने उसमें से चौथा भाग साधु को दे दिया, साधु भी लेकर चला गया। फिर जब खाने को हाथ में कवल लिया, त्यों ही वह देव फिर साधु का रूप लेकर सामने आया, हाली ने फिर दिया एवं फिर भोजन करने को बैठा, फिर वह देव स्थविर साधु का रूप लेकर आया, हाली ने अपना शेष समस्त भोजन दे दिया।

इस प्रकार उसकी सत्त्य परीक्षाकर दृढ़ निश्चयवाला जानकर देव प्रत्यक्ष प्रकट हुआ और कहने लगा, हे साहसधारी! सत्यवान् पुरुष! मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हुआ हूं, तेरा अनुराग श्री वीतराग धर्मपर हैं इसलिए मन चिंतित अर्थ तू माँग, मैं देने को तैयार हूँ। इस प्रकार देव के वचन सुनकर हाली बोला, हे देव! जो तुम मुझपर संतुष्ट हुए हो तो ऐसा वर दो जिससे दारिद्र रूपी अन्धकार लीन हो। यह सुन देवता "तथास्तु" (ऐसा ही हो) ऐसा कहकर अपने स्थान को चला गया। हाली भी प्रसन्न हुआ अपनी स्त्री से सब वृतान्त कहा, वह बोली, हे स्वामिन्! तुम धन्य हो जो तुम्हारी भक्ति श्री जिनराज के चरणो में है इसी के कारण देवता भी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ है और वर देकर गया।

इस प्रकार उसकी स्त्री ने भी धर्म की अनुमोदना की, जो मनुष्य भाव शुद्धि से पुण्य का संचय करता है उसकी यदि दूसरा मनुष्य अनुमोदना करें तो वह भी भव-भव में सुख पाता है।

क्षेमापुर नगर का स्वामी शूरसेन नामक राजा की विष्णुश्री नामक पुत्री थी, वह साक्षात् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के समान थी, उसका वर ढूंढ़ने के लिए राजा

ने देश, देशान्तर से राजकुमारों को बुलाया और स्वयंवर मंडप बनवाया। वह स्वंयवर अनेक पोल, सभा और सिंहासन से सुशोभित था और नगरी के बहार उद्यान खंड मे बिराजमान था। जिसमें सुवर्णमय स्तंभ रत्नजड़ित था, साक्षात् प्रधान देवभवन प्रकाशमान था। राजकुमार आने लगे और अपने वस्त्र और आभूषण से सज-धजकर सिंहासनों पर बैठ गये जिनके अंग पर अद्भुत शृंगार था और पुष्पमाला और अत्तर, फुलैल की सुगन्ध से चारों ओर मंडप को सुगंधित कर दिया था। रत्नजड़ित स्वर्णमय, उन सिंहासनों पर बैठे हुए विमानारूढ़ देवताओं के समान शोभा देते थे। जिनके मस्तक पर मुकुट छत्र और हिलते हुए चामरों ने कान्ति द्विगुणित कर दी थी। वे अपने-अपने राजकुलरूप कमलवन को सूर्य समान विकस्वर करते थे। उनमें राजकुमारी स्वरूची के अनुसार वर ढूंढने को हंसीनी के समान विचरती थी।

अब उस राजकुमारी के गमन समय में बहुत से बाजे बजने लगे। शंख, पटह और झालरा आदि वाद्यों का शब्द आकाश तक पहुंच गया, बाजे ऐसे मालूम होते थे मानों देवताओं ने ही बजाये हो। वह हाली भी मनुष्यो की भीड़ और नाटकादि के समारोह और कई प्रकार के बाजों के शब्द सुनकर वहां आया, उसके हाथ में हल की लकड़ी थी, सब समुदाय के साथ खड़ा-खड़ा राजकुमारों की शोभा देखता था।

अब राजकुमारी बहुत सी सखियों के परिवार के साथ मंडप की ओर आयी, साथ में प्रतिहारी थी वह लेख लिखित के अनुसार प्रत्येक राजकुमार का वर्णन करने लगी। उनेक देश, घोड़ा, रथ, पैदल और ऋद्धि का वर्णन करने लगी। माता-पिता के नाम बताये, परन्तु राजकुमारी को एक भी पसंद नहीं आया। उनको छोड़ वह हाली के पास गयी, वह अधिष्ठायक देव की सहायता से खड़ा था, उसको देव सहायी समझकर उसके गले में माला पहिना दी और अपना वर अंगीकार कर लिया। ऐसी अनुचित बात देखकर माता-पिता असंतुष्ट हुए। राजकुमारी के बांधव वज्राहत समान दुःखी होकर चिन्तातुर हुए विचार करने लगे, देखे इस राजकुमारी नें मूर्खाई की, बड़े-बड़े गुणी, शूर, प्रतापी राजाओं को छोड़कर हीनकुल, गंवार, किसान को अंगीकार किया।

शास्त्र में कहा है कि कौए के गले में मोती की माला शोभा नहीं देती, कुत्ते के कण्ठ में पुष्पों की माला शोभा नहीं देती और गधे पर रेशम की झूल शोभा नहीं देती है। इसी प्रकार यह कन्या हाली के साथ शोभा नहीं देती। इस तरह क्षणभर उदास हो राजा चंडसिंह आदि सब राजाओं ने परस्पर विचार किया कि इसके हल को तोड़कर हाली को मारकर कन्या ले लेनी चाहिए, नहीं तो राजकुल में कलंक

लग जायेगा।

इतने में चण्डसिंह नामक वह प्रतापी राजा बोला, इस कन्या ने मूर्खपन किया है जो हाली को अंगीकार कीया है, अब फिर स्वयंवर होना चाहिए और जिसको कन्या रूचि से वरे उसके साथ पाणिग्रहण (विवाह) होना चाहिए। इन वचनों से राजा शूरसेन बड़ा व्याकुल हुआ। इस अवसर में अधिष्ठाता देव ने राजा के परिणाम बदल दिये, उसका पिता बोला, हे राजा लोंगो! इसमें मेरा कोई दोष नहीं, इस कन्या ने अपने मन से जो किया सो अच्छा किया, मंडप में जो बात की जाती है वह बात सबको स्वीकार करनी पड़ती है। मुझे तो कन्या का किया गया ही सुंदर प्रतीत होता है, इसमें हठ करने की कोई आवश्यकता नहीं, यह कर्म तो स्नेह के संबंध और पूर्वालिखित कर्मों के संबंध से ही होता है।

अब चंडसिंह राजा सबसे कहने लगा, यह कन्या का पिता डरपोक लगता है इसलिए ऐसे वचन कहता है। फिर क्रोध से बोला हे राजाओ! तुम मत घबराओ, लड़ाई के लिए तैयार हो जाओ। इस भोली कन्या को अलग कर दो, शूरवीर पना दिखाओ, इस हाली को पकड़ो और इसका हल तोड़ दो और जो उसका पक्ष ले उसको भी मारो। ऐसे उस प्रधान राजा के वचन सुनकर चारों दिशाओं से राजा लोक शस्त्र लेकर उठे और हाली से कहने लगे, अरे पामर ! मूर्ख ! इस प्रधान राजकुमारी को कैसे ले जाता है? छोड़ दे।

ऐसे क्रोध के वचन सुनकर देवता सहायवान् हाली बोला- अरे पापी लंपट लोगों ! ऐसे वचन कहते तुम्हे लज्जा नहीं आती? अथवा तुम्हारी जीभ के सो टुकड़े क्यों नहीं होते? जो तुम परस्त्री पर अभिलाषा करते हो। क्षत्रियों का यह धर्म नहीं, क्षत्री ऐसी अयुक्त बात मुँह से कभी नहीं कहते? मैं पामर नहीं हूँ। तुम ही पामर प्रतीत होते हो, तुम अपने मन में यह जानते होंगे की हम बहुत हैं और यह अकेला हमारा क्या कर सकता है? यदि तुम्हारे मन में घमंड हो तो आओ और मेरे साथ संग्राम करो। वन में सिंह एक ही होता है पर उसके सामने से हजारों सियाल मुँह छिपाकर भाग जातें हैं।

ऐसी असंभव और अनुचित बात सुनकर चंडसिंह राजा अत्यन्त कोपाग्नि से प्रज्वलित हुआ और कहने लगा अरे सुभटो ! इस दुष्ट को मारो और इसकी जीभ मूल से उखाड़ डालो। स्वामी के वचन सुनकर सुभटों ने हाली को पैंरो से मारना चाहा त्यों ही हाली उठकर अग्निवत् जाज्वल्यमान शरीर से हल उठाकर मारनें को दौड़ा, उस अधिष्ठायक देव के कारण उसके तेज को सहन न करते हुए सुभट भागकर अपने स्वामी के शरण गये।

उस हाली का तेजस्वी रूप देखकर सब राजा लोग परस्पर विचार करने

लगे, यह कोई देवता हाली का रूप धरकर आया है? वीरों को कायर नहीं होना चाहिए, ऐसा साहस रखकर सब राजाओं ने चारों ओर से घेर लिया। तब हाली ने अपना पराक्रम दिखाया, ज्यों ही इसने अपना हल चारों ओर घुमाया त्यों ही सब राजा चारों दिशाओं में इस प्रकार भागने लगे जैसे सिंह के सामने हाथियों का झुण्ड (टोला) नष्ट हो जाता है।

वह हाली हलको धारण करता हुआ बलभद्र के समान पराक्रमी क्रोध से अग्निवत् दैदीप्यमान खड़ा है और अकेला संग्रामकर उसने जय लक्ष्मी को प्राप्त कर ली। इसने हल के तीखे भाग से शत्रुओं के शिर काट दिये, हाथिओं के कुम्भस्थल को अलग कर दिया, घोड़ों के समूह का चूर्ण किया, रथ समुदाय को तोड़ ड़ाला, सुभटों के छक्के छूट गये, सब सेनाओं का अहंकार जाता रहा। किसी भी सुभट की सामने खड़े रहने की हिम्मत न रही, दूर से खड़े-खड़े देख रहे थे, इतने में चंडसिंह प्रमुख सब राजा इक्ठे होकर विचार करने लगे, क्या साक्षात् यमराज? जो सर्व प्रजा का राज्य करने को उद्यत हुआ है या कोई देव है? इस प्रकार जीवितव्य का विचारकर उस देव-कोप को शांत करने को पास गये और हम आपकी शरण में हैं ऐसे वचन बोले। हम निर्बल हैं, आप सबल हो। हमारी रक्षा करो! रक्षा करो! यह कहते हुऐ हाली के पैरो में पड़ गये, मन में बड़ा त्रास प्राप्त हुआ, और बोले हे वीरपुरुष! तुम गुणवान्, पुण्यवान् हमारे स्वामी हो, हम तुम्हारे सेवक, हमें आज्ञा दो।

इस प्रकार बार-बार उस हाली को प्रणाम करते है और कहते है तुम धन्य हो, पराक्रमी हो। यह कहकर हाथ जोड़कर खड़े रहे। इतने में उस कन्या के माता-पिता, परिवार और बांधव आदि हाली का अद्भुत पराक्रम देखकर प्रसन्न हुए और विवाह की सामग्री तैयार करने लगे। विधिपूर्वक उस राजकन्या का बड़े महोत्सव के साथ विवाह कर दिया, अर्थात शूरसेन राजा ने विष्णुश्री को सभी राजाओं के सामने उस हलपति को दे दी।

वहां सब राजाओं ने मिलकर उस हाली का राज्य संबंधी पाट महोत्सव किया और विनती की कि हे महाराज! अब तुम हमारे राजा हो, तुम हमारे स्वामी हो, हम तुम्हारे सेवक होकर तुम्हारी आज्ञा में चलेंगे। इस प्रकार सबने सिंहासन पर बैठाकर राजपद दिया। हालीराजा ने भी उनकों सन्तोष दिया और कहा आज से मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, ऐसा कहकर सबको सम्मान प्रदान किया। हाली राजा के श्वसुर शूरसेन राजा ने सबकों वस्त्र, अलंकार आदि से सत्कारकर अपने-अपने देश में विदा किया। इस प्रकार हाली का मनोरथ सफल हुआ।

एक दिन अधिष्ठायक देव ने आकर हाली से कहा, हे भद्र! अब तेरा दरिद्र

गया, तू संतुष्ट हुआ! यदि फिर जो कोई तेरी इच्छा हो तो मांग मैं देने को उद्यत हूँ। ऐसे वचन सुनकर हाली राजा बोला, हे स्वामीन् यदि आप मेरे पर प्रसन्न हो तो जिस नगरी को आपने क्रोधकर उजाड़ दी थी और शून्य की थी, उसको बस मुझे दो तो मैं वहाँ रहुं और मैं वहां पर आपकी कृपा से राज्य करूं, यहां ससुराल में रहना मेरे लिए उचित नहीं। इतने वचन सुनते ही देव ने उस नगरी को बसा दी, जिसमें स्वर्णस्तंभ, रत्नजड़ित भवन बनायें, चारों ओर उच्च प्रकार के कोट-प्रकोट बनाये। मध्य में एक रमणीय, अद्‌भुत स्वर्णमय, उज्जवल, प्रासाद (राजमहल) बनाया। उसमें हाली राजा विष्णुश्री के साथ रहने लगा-सब ऋतुओं के अनेक प्रकार के भोग विलास इंद्र-इंद्राणी की तरह भोगता था।

(यह सब श्री वीतराग भगवान् की नैवैद्य पूजा का फल है-इसके उत्कृष्ट पुण्य का उदय हुआ है।)

इस प्रकार अपनी स्त्री के साथ उसको सुन्दर राज्य सुख श्री वीतराग भगवान् की नैवेद्य पूजा के प्रताप से मिला, यह जानकर हाली राजा ने श्रीजिनराज की भक्ति प्रारंभ की और प्रतिदिन अनुराग से विविध प्रकार की नैवेद्य पूजा करने लगा। इस प्रकार धर्म ध्यान करते-करते और अखंड राज्य सुख भोगते-भोगते समय व्यतीत होता है।

इस अवसर मैं वह अधिष्ठायक देव अपनी आयु पूर्णकर विष्णुश्री के गर्भ में पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने अपने परिवार के साथ बड़ा उत्सवकर उस कुंवर का नाम कुसुम कुमार दिया-वह कई धाईयो से लालन-पालन किया जाता हुआ यौवनावस्था को प्राप्त हुआ। सब कला सिखायी गयी। हाली राजा अपने पुण्य प्रभाव से उस पर अत्यन्त प्रीति रखता था, कुमार अपने माता-पिता का अत्यंत वल्लभ था। उसी हाली राजा ने अपने राज्य का काम अपने पुत्र को सोंप दिया, स्वयं श्रावक की करणी करने लगा-अन्त में आयु क्षयकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुआ।

वहां जय-जयकार शब्द सहित बड़ि ऋद्धि, विमान, देव देवियों का परिवार देखकर विचार करने लगा मैनें पूर्वभव में श्रीवीतराग परमात्मा की नैवेद्य पूजा की थी, उसका यह फल है। अप्सराओं की सुख संपत्ति को देख अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव को जान लिया और राज्य करते पुत्र को प्रतिबोध देना चाहा। वहां से अपने राज्य में आकर पिछली रात को अपने पुत्र से कहने लगा-हे प्रिय पुत्र! तू मेरी बात सुन मैंनें पूर्व भव में श्री वीतराग भगवान की नैवेद्य पूजा की थी, उससे मुझे देवलोक प्राप्त हुआ है। यह सब धर्म का प्रभाव है-अतः हे महा यशस्वी, वल्लभ पुत्र! तुम भी धर्म का उपार्जन करो जिससे सुख पाओगे, ऐसा प्रतिदिन कहकर देव

चला जाता।

एक दिन कुसुम राजा ने विचार किया यह कौन है? जो मुझे मधुर वचन सुनाकर चला जाता है, ऐसा विचारकर दूसरे दिन जब देव आया तब पूछने लगा। हे देव! तुम कौन हो? प्रतिदिन सुंदर वचन से कुछ कहते हो। प्रतिदिन मेरे उपकार की बातें कहकर चले जाते हो। मुझे इस बात को सुनने का बड़ा कौतुक है। ऐसे वचन सुनकर देव बोला, हे पुत्र! मैं तुम्हारे इस जन्म का पिता हूं। मैनें मनुष्य भव में श्री जिनराज की नैवेद्य पूजा की थी, इससे देवलोक में बड़ी ऋद्धि विमान, देवसुख मिला है-सो निरन्तर भोगता हूँ। तुमको संसार में मोहित देखकर धर्म का प्रतिबोध देने को आया हूँ। तुम भी मेरी आज्ञा से जिन भाषित धर्म का आदर करो। ऐसा कहकर वह देव अपने लोक में चला गया और वहां देवसुख भोगने लगा। अन्त में वहीं हाली का जीव सातवें भव में शाश्वत मोक्ष सुख को प्राप्त करेगा। हे भव्य लोगो! इस प्रकार श्री वीतराग की नैवेद्य पूजा का फल कहा। जिन पूजा से जीव को इस भव में दुर्लभ मनुष्य सुख मिलता है। अन्त में उत्कृष्ट देव संपत्ति और अलभ्य सुख प्राप्त होता है, तदन्तर मोक्ष के अनुपम सुख को भोगता है।

इति श्रीजिनपूजाष्टके नैवेद्यपूजाविषये, षष्ठं हालिकपुरुषकथानकं सम्पूर्णम्।

जितनी हो इन्द्रियों को तो करो जिनपूजा।

नन्दनपन से मुक्त होना हो तो करो जिनपूजा।

पूर्णरूप से कर्ममुक्त होना हो करो भावपूजा।

जाप में चित्त को एकाग्र करना यह भी भावपूजा।

मिथ्यात्व रूपी शत्रु का नाश करने के लिए जिनेश्वर भगवंत की द्रव्य एवं भावपूजा का आलंबन अत्यावश्यक है ऐसा माननेवाला तीनों संध्या में जिनपूजा करता ही है।

दुर्गता नारि, शुक मिथुन कथा

इस पृथ्वीमंडल में इन्द्रनगरी तुल्य काञ्चनपुर नामक नगरी थी, वहां १८वें तीर्थंकर श्री अरनाथ स्वामी का मंदिर था, उसके सामने उत्तम कमलवत् कोमल पत्ते और मंजरी और मधुर फल युक्त एक बड़ा आम का वृक्ष था। उसके कोटर (छिद्र) में एक शुक पक्षी का जोड़ा रहता था। उस मंदिर में कई बार महोत्सव होतें रहते थे। उस नगरी के राजा का नाम जयसुन्दर था, वह श्री जिनराज की पूर्ण भक्ति करता था। एक समय बड़े उत्सव के साथ नगर के लोगों के समुदाय सहित उस राजा नें फल पूजा की।

वहां एक दुर्गता नामक दरिद्र स्त्री रहती थी, वह राजा आदि को फल पूजा करते देखकर विचार करने लगी, धन्य हैं यह लोग जो अनेक प्रकार के फलों से श्री जिन भगवान की भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। मैं इस दारिद्र दुःख से पीड़ित हूं, मुझे एक फल भी नहीं मिलता, मैं कैसे फल पूजा कर सकुं? इस प्रकार दुःखित होकर मंदिर के सामने जाकर आम के वृक्ष के नीचे बैठ गयी। ऊपर शुकपक्षी आम के पके हुए फल खा रहा था। उसको देखकर दुर्गता ने कहा हे पक्षीराज! यदि तु मुझे एक फल दे तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो। यह सुनकर शुक बोला, हे भद्रे! तू फल से क्या करेगी? स्त्री ने कहा-श्री जिनराज की भक्ति से फल पूजा करूंगी फिर यह भी कहा यदि तुम मुझे फल दोगे तो श्री प्रभु के आगे फल समर्पण करके यह विनती करूंगी की इसका पुण्य शुक पक्षी और मुझे दोनों को मिले, इस कामना के लिए मैं तुमसे फल की याचना करती हूं।

यह सुनकर शुक बोला, हे भद्रे! इस फल पूजा से क्या लाभ होता है? तब वह कहने लगी, हे शुक ! जो प्राणी मनुष्य जन्म लेकर श्रीजिन भगवान की भक्ति से फल पूजा करता है उसके सब चिन्तितार्थ सफल होते हैं, ऐसा मैंने गुरु के मुख से उपदेश सुना था। श्री वीतराग भगवान के भी यहीं वचन है, इसलिए तुम मुझे फल दो, जिससे मेरी कामना सिद्ध हो। यह वचन सुनकर शुकी बोली, मैं स्वंय जाकर श्री जिन भगवान की पूजा करूंगी, तुमको आम का फल नहीं दुंगी, मैं हीं इसका फल पाऊंगी। यह सुन उस स्त्री ने अनुनय किया तब शुकपक्षी ने एक आम का फल उसको दिया और कहा कि तू अपना मनोरथ सिद्धकर वह स्त्री प्रसन्न हुई आम का फल लेकर श्री वीतराग के मंदिर में गयी और उसने भक्ति से फल समर्पण किया और भावना करती हुई एक तरफ बैठ गयी, किंचित् काल ठहरकर अपने घर गयी। इतने में वह शुक का जोड़ा भी अपनी चोंच में फल उठाकर वहां गये और अनुराग से श्री जिनराज के सामने रख दिया और विनती करने लगे हे प्रभो! मैं आपकी स्तुति नहीं जानता हूं और विधि भी

नहीं जानता हूं जो फल इस फल के समर्पण से प्राप्त होता है वह हमको भी प्राप्त हो, इस तरह कहकर अपने स्थान को चला गया।

वह दुर्गता स्त्री शुभ परिणाम से अपनी आयु पूर्णकर फल पूजा के प्रताप से देवलोक में उत्पन्न हुई, वहां अनेक प्रकार के सुख प्राप्त हुए। वह शुक मरकर देव भव के सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र में गन्धिलावती नामक नगरी में शूर नामक राजा की रयणा नामक रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ। गर्भ में आते ही रानी को तत्काल दोहद उत्पन्न हुआ। दोहद पूर्ण न होने से दिन-दिन दुर्बल शरीर होने लगा, एक समय राजा ने पूछा-हे प्रिये! तुझे कौनसा दोहद उत्पन्न हुआ, जिसकी चिन्ता से तेरा शरीर दुर्बल होता जाता है?

यह सुनकर रानी ने कहा हे प्रियतम! अकाल में आम के फल खाने का दोहद उत्पन्न हुआ सो कृपाकर पूर्ण करो, मुझे चिन्ता है की यह किस तरह मिलेगा। इससे मेरा शरीर दुर्बल होता जाता है, आप कोई उपाय कीजिए। यह सुनकर राजा बड़े चिन्ता समुद्र में गोता खाने लगा और विचार करने लगा कि यह बात कैसै बने, यदि न हुई तो रानी प्राण त्याग कर देंगी, इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रकार राजा अत्यंत दुःखी हो गया।

इतने में देवलोक में अवधिज्ञान से दुर्गता देव ने जान लिया कि वह शुक का जीव रानी के गर्भ में उत्पन्न हुआ है। ऐसा पूर्वभव का स्नेह जानकर वह देव राजा के पास गया और पूर्वभव का उपकार जानकर सहायता करना चाहा। इसनें विचार किया की उसनें पूर्वभव में एक आम का फल दिया था इसलिए उसकी माता की इच्छा पूर्ण करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा विचारकर नगरी में आकर एक सार्थवाह का रूप लेकर एक पके हुए आमों के फलों की छाब लेकर राजद्वार पर आया। राजा नें उसको भीतर बुलाया उसनें सभा में जाकर राजा को फलों की भेट दी। राजा ने सुन्दर फल देखकर सार्थवाह से कहा अहो पुरुष! आप कहां से आये है, यह आम के फल अकाल में कहा सें आये? इस प्रकार राजा के पूछने पर सार्थवाह ने कहा, हे राजेन्द्र! इस रानी के कुक्षी में जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसके पुण्य प्रभाव से अकालित फल मैंने पायें है। ऐसा कहकर वह वहां से चला गया।

वह राजा आनन्द को प्राप्त होकर विचार करने लगा, यह कोई देव मालूम होता है, इसका इस गर्भस्थ पुत्र के साथ कोई पूर्वभव का संबंध ज्ञात होता है, ऐसा विचारकर देव निर्मित फलों से रानी का दोहद पूर्ण किया।

अब पूर्ण दिन होने पर रानी के पुत्र का जन्म हुआ,पैदा होते ही उस कुमार के देवकुमारवत् सुलक्षण देखकर बधाई देने को राजा के पास सेवक दौड़े। पहिले बधाई वाले को राजा ने सन्तुष्ट होकर इतना द्रव्य दिया कि उसका दारिद्य चला गया।

दस दिन व्यतीत होने पर राजा ने महोत्सव करवाया, श्री जिन पूजा की और श्री गुरु पूजा की और अनाथों को इष्ट दान देकर सन्तुष्ट किया। शुभ दिन, शुभ मुहूर्त,

शुभ नक्षत्र में सभी कुटुम्बियों को बुलाकर बड़े उत्सव कराकर उस राजकुमार का नाम फलसार रखा। राजकुमार सौभाग्य गुण से शोभित था। जब यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब रूप और लावण्य की कान्ति द्विगुणित हो गयी। कामदेव समान रूपवान कुमार को देखकर इन्द्र भी अपने रूप मद को छोड़ता है। कुमार ऐसा ही बलवान् और देवकुमार सदृश था।

एकदा वहीं दुर्गता देवता देवलोक से आकर राजकुमार को पिछली रात में कहने लगा, हे राजकुमार! मेरे वचन सुनो, जो तुमने पूर्व भव में सुकृत सुकर्म का आदर किया था, उसकी कथा को कहता हूं। पहले कीर भव में तुम्हारी एक स्त्री थी, तुम दोनों नें मिलकर श्री जिनराज की फल पूजा की थी, जिसका फल यह प्राप्त हुआ है कि तुमने इतनी राज्य लक्ष्मी पायी है। तुम्हारी स्त्री भी फल दान के प्रभाव से देव लोक में गयी और वहां से आयु पूर्णकर राजपुर के राजा की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई है। तूने एक आम का फल मुझे भी दिया था, जिससे मैनें भी श्री जिनराज की पूजा की थी, जिसका फल मैनें बड़ी ऋद्धि पायी है। जब तुम अपनी माता के गर्भ में थे तब तुम्हारी माता को अकाल आम फल खाने का दोहद उत्पन्न हुआ था। जो मैने ही पूर्ण करवाया था । जो तुम्हारी शुक भव की भार्या थी वह राजपुर नगर के राजा अमरकेतु राजा की पुत्री चन्द्रलेखा नामक उत्पन्न हुई और यौवनावस्था को प्राप्त हुई है, उसका स्वयंवर रचाया गया है, उसमें कई राजकुमार आयेंगे। तुम अपने पूर्व भव का संबंध बताने को एक शुक मिथुन को चित्रपट में चित्रित करके ले जाना और उस राजकुमारी को दिखलाना, उस चित्र को देखते ही वह राजकुमारी जातिस्मरण ज्ञान से तुमको पहचानकर तुमको वर माला पहना देगी। फिर उसके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण होगा। इस बात में संदेह मत जानो। यह तुम्हारे पूर्व जन्म की कथा है। ऐसा कहकर वह दुर्गता देवता अपने स्थान पर चला गया।

उधर स्वयंवर मंडप बनाकर सभी राजाओं को आमन्त्रण भेजा गया इस राजा को भी बुलावा आया, तब कुमार भी शुकयुगल का चित्र साथ में लेकर स्वयंवर में गया। वहां की राजकुमार आये थे, और सिंहासनो पर बैठे थे। राजकुमारी ने सबको देखा मगर एक भी पसंद न आया। तब इस राजकुमार ने चित्रपट भेजा। उस राजकुमारी ने चित्रपट देखकर जातिस्मरण ज्ञान से पूर्वभव के स्नेहवश फलसार राजकुमार के गले में वरमाला पहिना दी।

राजा ने प्रसन्न होकर शुभ मुहूर्त देखकर विवाह किया, और एक महल रहने को दिया। वहां यह अनेक हाव, भाव, प्रमोद, हास्य, और नाटक विलास करते रहने लगे। कितनें ही दिनो के बाद राजकुमार को अपनी पुत्री के साथ सीख दी। सब नगर के लोगों के देखते-देखते प्रधान, वस्त्र, आभूषण, रत्न, मणि, माणिक्य और दास दासी प्रमुख देकर विदा किया। राजकुमार भी अपनी स्त्री शशिलेखा के साथ अपने श्वसुर से आज्ञा मांगकर सम्मान पाकर अपने नगर की तरफ चला। वहां पहुंचकर

सुख से अपनी स्त्री के साथ अनेक प्रकार के सुखों को भोगने लगा। सुख के दिन घड़ी के समान, वर्ष दिन के समान बितते थे। मन में जिस वस्तु को चाहता था उसी को सहज ही पाता था, पूर्व भव में जो श्री वीतराग की फल पूजा की थी, उसके फल स्वरूप महासुख भोगता था।

कोई समय सौधर्म देवलोक की सभा में इंद्र महाराज बैठे थे, वहां सभी देवताओं का समुदाय बैठा था, उनके सामने इंद्र ने कहा आज कल मृत्यु लोक में फलसार कुमार बड़ा पुण्यवान् है। वह जिस बात का मन में विचार करता है वह तत्काल प्राप्त हो जाती है। यह सुनकर कोई अहंकारी देव इंद्र के वचनों का विश्वास नहीं करके परीक्षा करने के लिए देवलोक से निकलकर यहां आया और महाभयंकर सर्प का रूप बनाकर फलसार की स्त्री शशीलेखा को डस लिया। सब राजकुल व्याकुल हो गया, राजा दुःखित होकर चिंता करने लगा। कई गारुडी मन्त्र वादी बुलायें उपचार कियें परंतु कोई शांति न हुई। तब गारुडीओ ने कहा इसका उपाय हमसे नहीं होगा, ऐसा कहकर वे सब अलग हो गयें। तब राजा ने परिवार सहित बहुत चिंता की जब रानी मूर्च्छित होकर चेष्टा रहित हो गयी। तब वहीं देवता वैद्य रूप धारणकर आया और कहने लगा, हे कुमार! यदि कल्पवृक्ष की मंजरी देवलोक से लावे तो रानी जीवित हो सकती है। ऐसा कहकर वह खड़ा रहा। राजकुमार मन में विचार कर रहा था। इतने में ही वहीं दुर्गता देवता अपने ज्ञान से राजकुमार को दुःखी जानकर वहां कल्पवृक्ष की मंजरी हाथ में लेकर आया, उसकी सुगन्ध से रानी का विष शांत हो गया। सबके मन में अत्यंत हर्ष हुआ, सब दुःख मिट गये।

इतने में देवता ने कुमार का सामर्थ्य देखने के लिए वैद्य का रूप छोड़ हाथी का रूप लिया और कुमार के सामने देखने लगा। कुमार ने देवता की सहाय से सिंह रूप लिया और देव के सामने देखने लगा, तब देव ने शार्दूल सिंह का रूप लिया, कुमार ने अष्टापद (सिंह) का रूप लिया। तब देवता ने अपना मायावी रूप छोड़कर अपना मूल रूप (देवत्व) धारण किया और प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिये। कुमार के प्रभाव से संतुष्ट होकर कुमार से बोले, अहो सत्पुरुष शिरोमणी, राजकुमार! जैसी इंद्र महाराज ने आपकी प्रशंसा की थी, हमने प्रत्यक्ष अपनी आंखों से देख लिया, आप अति पुण्यवान् हो। हे धर्मचारक ! आप अपनी मनोवांछित वस्तु मांगें, मैं देने को उपस्थित हूं, आपके प्रभाव से संतुष्ट हुआ हूँ।

ऐसे देव के वचन सुनकर कुमार बोला हे सुरवर्य! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे नगर को देवनगरवत् कर दीजिए। ऐसा सुनकर देव ने "तथास्तु" कहकर क्षणभर में नगर की रचना अनुपम कर दी। जिसके कोट चारों ओर रत्न और सुवर्णजड़ित है, ऐसे ही मध्य में गढ़ बनाया है। जाली, झरोखे सभी स्फटिक रत्न मय बनाये है। पूरा नगर देवपुरी सदृश है। उसके मध्य अलंकार भूत राजकुमार के लिए राजभवन बनाया है। वहां राजकुमार अपनी स्त्री सहित सुख भोगता है। इस प्रकार नगरी की रचना करके

राजकुमार के पास आया और संतोष देकर देवलोक में चला गया।

कुमार ने नगरी की रचना देव द्वारा की गयी जानी, बड़े पुण्य का संबंध मिला, ऐसा जानकर मन में संतुष्ट हुआ। हृदय में हर्ष इतना हुआ की समाया नहीं। इस प्रकार सुख से रहने लगा।

कितने ही दिन व्यतीत होने पर कुमार के पिता राजा शूर राज ने गुरु के मुख से धर्मोपदेश सुनकर कुमार को राज्य देकर। शीलंधर आचार्य के पास से दीक्षा ली।

अब कांचनपुर में फलसार राजा राज्य करने लगा और शशिलेखा रानी के साथ राज्य सुख भोगने लगा। इन्द्रवत् राज्य पालन करने लगा। इस प्रकार राज्य करते - करते फलसार राजा के एक कुमार शशिलेखा के कुक्षी से पेदा हुआ और उसका नाम चन्द्रसार दिया गया।

कुमार भी माता-पिता को सुख देता हुआ बढ़ने लगा। साथियों के साथ कला ग्रहण करने लगा। चन्द्रमा की तरह कुल कुमुद वन को प्रफुल्लित करता हुआ बाल्यावस्था छोड़कर यौवनावस्था को प्राप्त हुआ।

फलसार राजा अपनी पत्नी के साथ श्री जिनराज की निर्मल भक्ति पूर्वक फल पूजा सदा करने लगा। अपनी वृद्धावस्था को जानकर वैराग्य को प्राप्त हो चन्द्रसार कुमार को राज्य सौंपकर रानी के साथ गृह से निकल गया। श्री जिनमार्ग का आदर करके शुद्ध चारित्र पालन करने लगा। रानी के साथ उग्र तपस्या करके निर्मल शुद्ध मन परिणाम से आराधना युक्त समाधि मरण प्राप्तकर उत्तम देवलोक में देवता की पदवी को प्राप्त हुआ। वहां अपने मित्र दुर्गता देवता के साथ और अपनी स्त्री के साथ देवलोक में उत्तम सुख भोगने लगा। इस भव सें सातवें भव में सिद्ध को प्राप्त होगा।

हे भव्य जनों ! जो धीर प्राणी इस संसार में है उनके उपकारार्थ यह फल पूजा की महिमा कही है। कई उपसर्गों का मिटानें वाला, सब सुख का दाता,मनुष्यों के उपकार के लिए संक्षेप में यह महात्म्य कहा है। भव्य प्राणियों के वर्णन करने योग्य, भवभ्रमण दुःखों को दूर करने वाली इस फल पूजा को श्रद्धा और भक्ति के सहित करना उचित हैं।

इति श्रीजिनेन्द्रपूजाष्टके फलपूजोद्यमविषये दुर्गतानारी-शुककथानकं संपूर्णम्।

विधि का खयाल आत्मिक एवं भौतिक सभी क्रियाओं में अत्यावश्यक माना गया है। अविधि कभी-कभी पूजा के फल को विनष्ट भी कर देती है।

विप्र पुत्री सोमश्री की कथा

इस भरत क्षेत्र में प्रसिद्ध सुरपुर सदृश ब्रह्मपुर नाम का सुंदर नगर है। वहां हजारों ब्राह्मण रहते थे, उनमें एक वेदवेत्ता, सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमा नामकी स्त्री थी, उसका पुत्र यज्ञकेतु नामका था। निर्मल वंश में उत्पन्न हुई सदा धर्म में उद्यम करने वाली सोमश्री नामक उसकी स्त्री थी। वह श्वशुरादि को विनीत थी, सब परिवार के साथ सुख से रहती थी। इस प्रकार रहते-रहते बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन सोमिल विधि के वश रोग से मरण को प्राप्त हुआ। पुत्र ने मृत कार्य प्रारंभ किया सोमा अपनी सोमश्री आदि पुत्र वधुओं को कहती है-हे वधुओं! जलांजलि के लिए जल से भरे घड़े लाओ और श्वशुर के लिए प्रीति दान दो। यह सुनकर घड़े लेकर घर से निकली और जल पूर्ण तालाब से घड़े भरकर लाती थी, मार्ग में एक जिनमंदिर था, वहां सोमश्री ने एक साधु के मुख से सुना कि जो जिनराज की भाव से जलपूजा करता है वह रमणीय सुख और परमपद (मुक्ति स्थान) पाता है। जो प्राणी जल से भरा हुआ घड़ा अथवा गागर (मटकी) से श्री जिनराज के आगे भक्ति से पूजा करता है वह ज्ञान पावे अथवा उसकी आत्मा सद्‌गति को प्राप्त हो।

ऐसे वचन सुनकर सोमश्री को पूजा का भाव उत्पन्न हुआ, उसने अपना जलपूर्ण घड़ा श्री जिनवर के आगे चढ़ा दिया, और सामने खड़ी होकर विनती करने लगी । हे स्वामिन्! मैं मूढ़ हूं, आपकी स्तुति और भक्ति नहीं जानती हूं, परंतु आपके आगे जल पूर्ण घड़े का पुण्य मुझे दे। इस प्रकार सामने खड़ी हुई विनती करने लगी।

यह सब देखकर साथवाली स्त्रीओं ने सासु से जाकर कहा, हे सोमे! तुम्हारी पुत्रवधू सोमश्री ने श्री वीतराग के सामने जल घट का दान किया।

ऐसे वचन सुनते ही उस सोमा ब्राह्मणी ने क्रोध किया और अग्निवत् ज्वलित हुई बोली, जो घड़ा मेरे पति को जलांजलि देने को लाया गया था, वह उसने जिन मंदिर में कैसे चढ़ा दिया? इतने में उसकी पुत्रवधु सोमश्री आयी उसको देख अत्यंत कुपित हुई लकड़ी लेकर कहने लगी, 'अरी दुष्टा! तुं हमारे घर से घड़ा लेकर गयी थी, वह क्यों नहीं लायी? बिना घड़े के अन्दर मत आ, घड़ा लेकर आना।' फिर कहने लगी तुजे जिनपूजा वल्लभ लगी जो ब्राह्मण निमित्ते लाया हुआ घड़ा जिनेश्वर के आगे रख दिया और तर्पण (पितृओं को तृप्त करने हेतु जलांजलि) नहीं कराया। इस प्रकार कहके उसको घर से बहार निकाल दिया।

तब वह विलाप करती हुई, रोती हुई कुम्हार के घर पर गयी और बोली हे बान्धव! मुझे एक घड़ा दे और मेरे हाथ के कंकण ग्रहणकर। यह सुनकर कुम्हार

बोला, हे बहिन! तू क्या मांगती है? और क्यों घबराती है? विलाप करने और रोने का कारण क्या है? तब सोमश्री ने उससे अपना सारा वृतान्त कह दिया। यह सुनकर कुम्हार बोला हे बाई! तू धन्य है, तूने श्री जिन मंदिर में जल दान दिया, वह बहुत अच्छा किया। मनुष्य जन्म पाने का यही लाभ है, यह ही मुक्ति का सुखदायी बीज है। ऐसी अनुमोदना करते हुए उसने शुभकर्म का उपार्जन किया। शास्त्र में कहा है-जो जीव धर्म की अनुमोदना करता है वह संसार समुद्र से पार हो जाता है।

वह कुम्हार बोला, हे बहन! यह घड़ा ले और अपना कार्य कर, मुझसे बहन के हाथ का कंकण कैसे लिया जाय? यह कहकर उसको घड़ा दे दिया। सोमश्री ने सुन्दर घट लेकर पवित्र निर्मल जल से भरकर सासू को लाकर दे दिया।

सासू ने जल से भरा हुआ घड़ा देखा, और प्रसन्न हुई लेकर आनन्द को प्राप्त हुई। बहु को डांड डपट करने का उसको बड़ा प्रश्चात्ताप हुआ। पर उसने अंतराय कर्म बांध लिये, वे कर्म भव-भव में अत्यंत कष्ट देते है। कुम्हार ने शुभकर्म उपार्जन किये, जिससे अन्त में अच्छे भावों से मरकर कुम्भपुर नामक नगर में श्रीधर नामक राजा हुआ। वहां उसने राज्य लक्ष्मी पायी और वहां उसकी एक श्रीदेवी नामक रानी थी, उससे अनेक सुख भोगता था। उसको पुण्य के प्रभाव से मांडलिक राजा प्रणाम करते थे और उसकी आज्ञा मानते थें। उसकी ऐसी महिमा थी कि सब छोटे राजा उसके चरणकमल में अपना शिरो मुकुट रखते थे और वह राज्य सुख भोगता था।

इसी अवसर पर वह सोमश्री ब्राह्मणी शुभ ध्यान से मरकर उसी राजा के श्रीदेवी नामक रानी के गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई। राजा ने बड़ा आनन्द महोत्सव किया, शुभ ग्रहो के योग से सबको प्रिय लगने लगी थी। माता पिता को अत्यंत वल्लभ थी। यह सब प्रभाव श्री जिनराज के जल पूजा का था।

गर्भ अवस्था में माता को जल पूजा का दोहद उत्पन्न हुआ था कि मैं स्वर्ण कलश से श्री जिनराज को स्नान कराऊँ, उसकी यह इच्छा राजा ने पूर्ण की थी। शुभ दिन में उसका जन्म उत्सव हुआ था, सब परिवार, कुटुंब को दसवे दिन बुलाया, चन्द्र सूर्यादि की पूजा करायी गयी, कई मित्र सज्जनों को अन्न, वस्त्र, आभूषणों से सत्कार करके उसका नाम कुंभश्री स्थापन किया। वह कन्या कल्पवल्ली के समान प्रतिदिन माता पिता के आनन्द के साथ बढ़नें लगी। जब वह राजकुमारी चन्द्रमा की शुक्लपक्ष की कला के समान बढ़ती हुई पांच वर्ष की हुई तब चौसठ कला पढ़ने लगी। बाल्यावस्था छोड़कर रमणीय यौवनावस्था को प्राप्त हुई। पिता के घर में रहती हुई देवलोकवत् इष्ट परम सुख भोगती थी और माता-पिता को अत्यंत वल्लभ थी।

इसी अवसर में बहुत साधुओं के परिवार सहित चार ज्ञान को धारण करने वाले मुनिराज उस नगर के पास के उद्यान में बिराजमान हुए। उन आचार्य का नाम विजयसूरि था। राजा अपने नगर के पास मुनि आये हुए जानकर अपने परिवार के साथ चतुरंगणी सेना साथ ले वंदन करने वहां आया। अपने साथ में रानी और पुत्री कुंभश्री

को भी लाया था, नगर के नर नारियों के झुंड के झुंड साथ में थें। दूर से ही मुनिराज को देखकर अपने हाथी से उतरकर राज चिन्ह छोड़कर रानी और पुत्री सहित तीन प्रदक्षिणा देकर वन्दन करने लगा। दूसरें लोगो ने भी भक्ति से नमस्कार वंदना की, भक्ति और श्रद्धा के साथ पुत्री ने मन में आल्हादित होकर वन्दना की।

सब लोग राजा सहित धर्म सुनने की इच्छा से मुनिराज के पास बैठ गये। इसी अवसर में एक दरिद्र स्त्री आयी, जिसके पुराने फटे कपड़े थे और शरीर धूल से भरा था, साथ में कई बालकों का परिवार था, उसके मस्तक में मांस के पिंड समान गड़, गूमड़ (स्फोटक) उठे हुए थे। उनके दुःख से अत्यंत दुःखित थी। वह आकर गुरु के चरणों के पास आकर बैठ गयी। राजादिकों ने उसे दया की दृष्टि से देखा। तब राजा ने हाथ जोड़कर विनती की हे भगवन्! यह स्त्री कौन है? अत्यंत दुःखित क्यों है? मुझे भयंकर राक्षसी मालूम होती है। इस प्रकार राजा के वचन सुनकर मुनिराज बोले, हे राजन्! सुनिये तुम्हारे इस नगर में दुर्गीति नामक एक गृहस्थ रहता है। उसकी वेणुदत्त नामक एक पुत्री है। बहुत साल पहिले इसी जन्म में उसकी दरिद्र अवस्था हुई, माता पिता इसको देख कर कर्मयोग के कारण मरण को प्राप्त हुए। यह सुन मस्तक कंपाकर राजाने आश्चर्य के साथ मन में विचार किया, देखो इस संसार में जीवों के कर्मयोग के विषम परिणाम होतें है। वह दरिद्र स्त्री मुनि के वचन सुनकर गद्‌गद् स्वर में रोती हुई बोली हे भगवन्! आप कृपाकर कहीये मैने पूर्वजन्म में कौनसे पाप कर्म किये है? जिससे मेरी यह दशा हुई। यह सुनकर मुनिराज बोले, हे भद्रे! सुन मैं तेरे पूर्व जन्म के संबंध कहता हूं, कि किस प्रकार तुमने अशुभ कर्म का उपार्जन किया है।

हे भद्रे! इस भव से पूर्वभव में तुं ब्रह्मपुर नामक नगर में सोमा नामक ब्राह्मणी थी, तेरी पुत्रवधु सोमश्री नामक थी, उसने श्री जिनराज के सामने निर्मल जलपूर्ण कलश का दान किया था, तुमने सुनकर अत्यंत कोप किया और कठोर वचन कहे थे कि तुमने जिन के सामने जल का घड़ा क्यों चढ़ा दिया? यह बड़ा अंतरायकर्म तूने बांधा, इस दोष से तुने यह भारी दुःख पाया है। यह सुन वह दुर्गता स्त्री ने भारी पश्चात्ताप किया, और कहा कि हे भगवन्! यह अंतराय कर्म किस उपाय से दूर होगा? कृपाकर कहीये।

तब मुनिराज बोले। हे भद्रे! ऐसे कर्म पश्चात्ताप से तूट जाते है एक भव में बंधे हुए कर्म बहुत काल तक नहीं रहते। शास्त्र में कहा है जो जीव किये हुए कर्मो का शुद्धभाव से पश्चात्ताप कर लेता है तो उसके कर्म मृगावती के समान दूर हो जाते है। जैसे मृगावती को अतिचारं लगा था, पर चन्दनबाला से कहने से मन में उसने बहुत पश्चात्ताप किया जिससे तत्काल उसको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, इसलिए पश्चात्ताप के बड़े फल है।

यह सुनकर दुर्गता स्त्री ने मुनिराज के सामने हाथ जोड़कर खड़ी होकर पूछा- हे भगवन्! वह सोमश्री मरकर अब कहां उत्पन्न हुई है? उस पुण्य से कौनसी गति

पायी है? अब आगामी भव में कौनसी गति पावेगी? इसका आप मुझको वर्णन सुनाइये।

तब मुनिराज बोले, उस सोमश्री का जीव कुंभश्री के रूप में इस समय अपने पिता के चरणकमल के पास बैठी है। इस समय मनोवांच्छित सुख भोगती है, यहां से फिर पूर्ण आयु भोगकर समाधि से मरण को प्राप्त होकर देवताओं के सुख पायेगी, फिर मनुष्य भव के सुख पायेगी, फिर भोगावली कर्म भोगकर इस भव से पांचवे भव में केवलज्ञान को प्राप्त होकर अन्त में मुक्तिपद को प्राप्त होगी। यह सब श्री जिनराज़ की जल पूजा का महाप्रभाव है। इसी कारण इस भव में भी बड़े-बड़े सुखों का उदय हुआ है।

यह बात गुरु के मुख से सुनकर कुंभश्री नामक राजपुत्री को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसने अपना पूर्वभव का संबंध जाना, उठकर गुरु के चरणो में प्रणाम करने लगी। भक्ति के साथ हाथ जोड़कर बार-बार वन्दना करने लगी औरआचार्य के सामने खड़ी होकर अपने पूर्वभव की बात पूछने लगी, हे भगवन्! उस कुम्हार का जीव इस जन्म में कहां उत्पन्न हुआ है? जिसनें मुझको भक्ति से घड़े का दान दिया था वह गुणवान् मुझको अत्यंत प्यारा है। वह कौन से उच्चकुल में किस आचार से रहता है। यह बात कृपाकर मुझको बताइये।

तब गुरु बोले हे भद्रे! वह कुम्हार महानुभाव भक्ति से अनुमोदन गुणों को धारण करता हुआ तेरी भक्ति का स्मरण चित्त से करता हुआ मरकर इस भव में तेरा पिता राजा हुआ है।

यह बात गुरु के मुख से सुनकर राजा मन में अत्यंत संतुष्ट हुआ, उठकर बार-बार गुरु को प्रणाम करने लगा। पूर्व भव का चरित्र जातिस्मरण ज्ञान से जानकर, जैसे गुरु ने कहा वैसे आद्योपान्त अपने पूर्व भव का संबंध प्रत्यक्ष देखा, देखकर गुरु से इस प्रकार कहने लगा। हे भगवन्! जैसे आपने कहा वैसी ही यथास्थित वार्ता है, हमने भी जातिस्मरण ज्ञान से अपना पूर्व भव का सम्बंध जाना।

अब दुर्गता स्त्री के पास आकर कुंभश्री ने अपने पूर्व भव के अपराध क्षमा करायें, और बार-बार पैरो में प्रणाम किया। दुर्गता ने भी सरल स्वभाव से महासती कुंभश्री से कहा हे बहन! यह मेरे रोग रूपी घड़े का भार उतारो, कृपया मेरी आत्मा का हित करो। तब कुंभश्री ने उसके मस्तक पर हाथ फेरा, जिससे उसकी व्याधि मिट गयी।

ऐसा चरित्र देखकर राजा ने अपनी पुत्री और बहुत से लोगो के साथ उज्ज्वल भक्ति से श्री जिनराज की जल पूजा करने की तैयारी की। कुंभश्री जैसे पिता करता है वैसे ही श्री जिनराज की जल पूजा करने लगी, दोनों संध्याओं के समय पिता पुत्री स्वर्ण कलश जल में भरकर श्री वीतराग भगवान् को मज्जन (स्नान) कराकर भक्ति

राग प्रगट करते है।

वह मुनिराज भी भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए संसार के दुःख से छूड़ाते हुए, स्वयं आत्म विचार करते हुए जीवों को संसार से पार उतारते हुए, पृथ्वी मंड़ल में जगह-जगह विहार करने लगे। स्थान-स्थान पर अपना महात्म्य प्रकट करते हुए गांव में एक रात्रि और नगर में तीन रात्रि निवास करते हुए विचरने लगे।

वह दुर्गता नारी शुद्ध मन से उपदेश सुनकर वैराग्य रंगसे रंगी हुई एक साध्वी के पास महाव्रत अंगीकारकर निरतिचार चारित्र पालती हुई ग्राम, नगर और पृथ्वी मण्डल में विचरने लगी। एवं धर्म ध्यान करते हुऐ उसका जीवन व्यतीत होता था।

राजा की पुत्री कुंभश्री शुद्ध परिणाम से आयु का पालनकर यहां से मरकर ईशान देवलोक में देवता उत्पन्न हुई, वहां देव सुख भोगने लगी, कई गीत, नाटक, कला और विविध प्रकार के विलास करती हुई समय बिताती थी। वहां से च्युत होकर मनुष्य भव में मनुष्य अवतार लेकर, वहां भी राज्य सुख ऋद्धि भोगकर देवता हुई। फिर मनुष्य भव पाकर वैराग्य से दीक्षा लेकर केवलज्ञान को प्राप्तकर पांचवे भव में सिद्धपद को प्राप्त हुई।

इस प्रकार हे भव्य लोगों! तुम भी अष्ट प्रकार की पूजा का महात्म्य सुनकर श्री वीतराग की विविध पूजा में आदर करो, जिससे विघ्न रहित रमणीय सुख प्राप्त करोगे और अन्त में शाश्वत सुख को प्राप्त होगा।

इस प्रकार केवली विजयचन्द्र जी ने अपने पुत्र हरचन्द्र को आठ प्रकार की पूजा का महात्म्य कहा।

इति श्रीजिनेन्द्रपूजाष्टके जलकुम्भपूजोद्यमविषये
विप्रपुत्री सोमश्रीकथानकं अष्टमसमाप्तम्
रामाष्टनवचन्द्रेऽब्दे (१९८३) मासि पौषे सिते दले।
दशम्यां बुधवारेऽभूत् पूजाष्टकसमाप्तिका ॥ ९ ॥

अष्टप्रकारी पूजा अष्ट कर्म, अष्ट मद का निवारण करने में सहायक साधन है। और अष्टमी गति को प्राप्त करवाने में प्रथम सीढ़ी भी है।

देव, मानव एवं तिर्यंच के लिए कर्म क्षय का सहज सुलभ साधन है अष्ट प्रकारी पूजा।

आश्रवो भवहेतु स्यात्, संवरो मोक्षकारणम् ।
इतीयमार्हती दृष्टिरन्यदस्याः प्रपन्चनम् ॥

परम कृपालु परमात्मा की आज्ञा-संदेश इतना ही है कि आश्रव-कर्म का आत्मप्रदेश पर आना संसार वृद्धि का कारण है और संवर आत्म प्रदेश पर कर्मका न आना यह मोक्ष का कारण है। इसके अलावा जितना भी कथन है वह सब उसका ही विस्तार है।

अतः प्रत्येक आत्मा को चाहिए कि वह जिन भक्ति के द्वारा अपने आत्मप्रदेश पर कर्म परमाणु का आना रुक जायें और पूर्व के कर्मों की निर्जरा हो। ऐसी चित्त वृत्ति से प्रभु भक्ति करें।

कथा भाग : 1-2

પ્રિન્ટીંગ : જય જિનેન્દ્ર, અમદાવાદ. મો.: ૯૮૨૫૦ ૨૪૨૦૪